मुख्यमंत्री
कि कांग्रेस
विजयी होनेके
है।

कोहिमा आर्ट्स
नगानेशनल डेमोक्रेटिक
सभाको सम्बोधित करते हुए
कि कांग्रेस (इ) झूठे वायदे कर
सभाको कांग्रेस (इ) के पैसे और झूठ वायदोंमें
नहीं आनेके लिए सचेत किया।

प्रदेश सरकारकी किसान विरोधी नीतियोंकी निंदा

नयी दिल्ली, १५ नवम्बर (भा.)। लोकदल (ब) की राष्ट्रीय कारिणीकी दो दिवसीय बैठक आज यहां पार्टी अध्यक्ष हेमवतीनन्दन बहुगुणाकी अध्यक्षतामें शुरु हुई। कार्यकारिणीमें उत्तर प्रदेश सरकारकी किसान विरोधी नीतियोंकी तीखी आलोचनाकी गयी तथा एक प्रस्ताव पासकर श्रीलंकामें भारतीय शांति सेनासे अविलम्ब युद्ध विराम घोषित करनेकी मांगकी गयी।

हिन्दीको अपनानेसे विश्वका कल्याण

... दिल्ली, १५ नवम्बर (भा.)। उपराष्ट्रपति डा. ... दयाल शर्माने आज कहा कि संस्कृत ... भारतका ही नहीं समूचे विश्वका क... है। उन्होंने कहा मैं यह बात ... नाते नहीं कह रहा वास्त... प्रगतिमें हिन्दी...

स्वरूप फ्रांसीसी कम्पनी का

केवल तटस्थ नीति का ही पाल
में सम्राट औरंगजेब के शा
ग नहीं लिया था। परन्तु
ल साम्राज्य पर मानों काठ
ल सत्ता का वह महान् भव
निरन्तर प्रयत्न करना पड़ा थ
कलह और बाहरी आक्रमणों
दारों ने इस राजनैतिक हलच
ा कर दीं और इस प्रकार सम्रा
में मरहठों ने अपनी सीमा क
राजाओं ने अपनी खोई हु
में मुठभेड़ होने लगी और दे
कम्पनी ने इस समय तक भार
था उन्हें सैनिक शिक्षा प्रदा
तथा दूसर
नीति के

बहुत सी व्यापारिक सुविधाएँ देने का वचन दिया। कम्पनी ने इस स्थिति का पूरा लाभ उठाया और इस प्रकार वह साम्राज्य स्थापना के मधुर स्वप्न देखने लगी। उसने कभी एक राजा को सहायता दी तो कभी दूसरे को। वह सदा उस ओर का ही पक्ष लेती थी जिधर उसे जीत की आशा होती और इस प्रकार उसे धीरे-धीरे विजेता राजाओं द्वारा अनेक गाँव तथा नगरों का अधिकार मिल गया। इस योजना के आधीन उसका अधिकार क्षेत्र इतना बढ़ा कि सन् १७५६ की प्लासी का लड़ाई के पश्चात् वह पूरे बंगाल की ही स्वामिनी बन गई। सन् १७६५ ई० में इलाहाबाद की संधि के फलस्वरूप उसे दीवानी का हक भी मिल गया। वैलेजली की सहायक सन्धि की नीति से उसका अधिकार क्षेत्र और भी अधिक विस्तृत हो गया। लार्ड हेस्टिंग्ज ने इस काम को और आगे बढ़ाया और लार्ड डलहौजी ने तो इसे अन्तिम सीमा तक पहुँचा दिया। १८५७ ई० के भारतीय विद्रोह ने मुगल सम्राट की सत्ता को सदा के लिए भारत से लुप्त कर दिया और उसके स्थान पर ईस्ट इंडिया कम्पनी भारत की भाग्य विधात्री बन गई। कंपनी के व्यापारी अब हमारे देश के शासक बन गये। परन्तु ब्रिटिश सरकार ने इसके पश्चात् कंपनी के हाथों में भारतीय शासन की बागडोर सौंपना ठीक न समझा और उसने स्वयं कंपनी के नौकरों को विदा कर अपने हाथों में ही हमारे देश का शासन सँभाल लिया।

पार्लियामेंट का कम्पनी के कार्य में हस्तक्षेप

जिस समय धीरे-धीरे ईस्ट इंडिया कंपनी का प्रभुत्व भारतीय शासन पर निरन्तर बढ़ता जा रहा था तो आरंभ में, बहुत काल तक ब्रिटिश सरकार ने उसके काम में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप करना उचित न समझा। कंपनी का संचालक बोर्ड भारत का शासन प्रबन्ध करने के लिये पूर्ण रूप से स्वतंत्र था। वह जैसे भी चाहता शासन का कार्य चलाता था परन्तु जिस समय कंपनी का अधिकार क्षेत्र बहुत अधिक बढ़ गया और कंपनी के व्यापारियों ने शासन के कार्य को भी एक व्यापार का ही रूप दे दिया, खूब यहाँ की जनता का शोषण किया, दिन दहाड़े लोगों को लूटा, उनसे दिल खोलकर रिश्वत लीं, खूब अपने खजानों को भरा, सरकारी नौकरी के साथ साथ स्वतंत्र व्यापार किया, व्यापारियों से चीजें खरीदीं; परन्तु उनको उनका मूल्य नहीं दिये त

कारीगरों से अच्छी-अच्छी चीज बनवाई, परन्तु उन्हें वेतन नहीं दिया, और इस जुल्म, दमन तथा निर्लज्ज व्यवहार की कहानियाँ ब्रिटिश पार्लियामेंट के सदस्यों तक पहुँची तो उन्होंने ईस्ट इंडिया कंपनी के काम में हस्तक्षेप करने की ठानी। एक ओर तो कंपनी के नौकर बेईमानी, लूट, रिश्वत तथा व्यापार से अपने घर का खजाना भर रहे थे और इंगलैंड लौट कर बड़े-बड़े आलीशान महल तथा संपत्ति खरीद कर अपने प्रतिद्वन्द्वियों के हृदय में जलन तथा ईर्ष्या की ज्वाला को भड़का रहे थे, दूसरी ओर ईस्ट इंडिया कंपनी का स्वयं का दिवाला निकला जा रहा था और सन् १७७० में वह पार्लियामेंट से कह रही थी कि उसकी गिरती हुई आर्थिक स्थिति को सँभालने के लिये उसे कर्ज़ दिया जाय। पार्लियामेंट ने यह सारे वृत्तांत सुन कर कंपनी की हालत का सही पता लगाने के लिये एक गुप्त कमेटी की नियुक्ति की। इस कमेटी ने बतलाया कि कंपनी के नौकरों के हाथ किस प्रकार जुल्म, बेईमानी, रिश्वत तथा लूट के रँग में रँगे थे और किस प्रकार सभ्य संसार में अँगरेज शासकों तथा ब्रिटिश पार्लियामेंट का नाम बदनाम हो रहा था। इस वृत्तांत को सुन कर तथा ब्रिटेन की जनता के स्वयं कंपनी के विरुद्ध आन्दोलन से प्रभावित होकर ब्रिटिश पार्लियामेंट ने सन् १७७४ में ईस्ट इंडिया कंपनी के प्रबन्ध को सुधारने के लिये "रैग्यूलेटिंग ऐक्ट" (Regulating Act) पास करने का निश्चय किया।

१. १७७४ का रैग्यूलेटिंग ऐक्ट

भारत के वैधानिक इतिहास में इस ऐक्ट का पास करना एक बड़े महत्व की बात थी, क्योंकि यह प्रथम अवसर था जब ग्रेट ब्रिटेन की सरकार ने भारत को संरक्षता की घोषणा की। भारतीय शासन में पार्लियामेंट के सीधे हस्तक्षेप का यह पहला ही उदाहरण था।

इस ऐक्ट के द्वारा भारतवर्ष में एक दोहरी सरकार की स्थापना की गई। व्यापारिक तथा आर्थिक क्षेत्र में कम्पनी के बोर्ड आफ डाइरेक्टर को ही सारा काम सौंपा गया; परन्तु शासन की बागडोर बंगाल के गवर्नर-जनरल तथा ब्रिटिश सरकार द्वार चुने हुये चार ऐक्जीक्यूटिव कौंसिलरों के हाथ में दे दी गई। अब तक बम्बई और मद्रास के प्रान्त वहाँ के गवर्नरों तथा उनकी काउन्सिल द्वारा शासित होते थे। इस ऐक्ट के पास होने के पश्चात्

वह बंगाल के गवर्नर जनरल के आधीन कर दिये गये। इन गवर्नरों से गवर्नर-जनरल के पूछे बिना किसी राज्य के विरुद्ध लड़ाई की घोषणा करने अथवा किसी राज्य से संधि आदि करने की आज्ञा भी ले ली गई। इस ऐक्ट के द्वारा एक प्रधान न्यायालय स्थापित करने का आयोजन भी किया गया, जिसमें एक मुख्य न्यायाधीश, और चार सहायक न्यायाधीशों की नियुक्ति की गई। इस न्यायालय का अधिवेशन कलकत्ते के फोर्ट विलियम किले में होता था। ऐक्ट के आधीन प्रथम गवर्नर-जनरल वारेन-हेस्टिंग्ज को बनाया गया।

रैग्यूलेटिंग ऐक्ट के दोष—रैग्यूलेटिंग ऐक्ट की धाराएँ सन्तोषजनक सिद्ध नहीं हुईं। कारण, इसके आधीन एक दोहरी सरकार की स्थापना की गई थी और गवर्नर-जनरल तथा बोर्ड आफ डाइरेक्टर्स के अलग-अलग अधिकारों का स्पष्ट रूप से वर्णन नहीं किया गया था। इस प्रकार इन दोनों अधिकारियों में संघर्ष रहने लगा। मुख्य न्यायालय के अधिकारों की सीमा भी ठीक-ठीक नहीं बतलायी गयी थी। ब्रिटिश पार्लियामेंट द्वारा गवर्नर-जनरल और उसकी काउन्सिल के सदस्यों की नियुक्ति का अधिकार भी अपर्याप्त समझा गया। इन दोषों को दूर करने के लिए पार्लियामेंट ने एक और ऐक्ट पास किया जिसे 'पट्स इंडिया ऐक्ट' कहते हैं।

२. १७८४ का पिट का इंडिया ऐक्ट

इस ऐक्ट के द्वारा गवर्नर-जनरल की नियुक्ति का अधिकरर पार्लियामेंट के हाथों से लेकर एक बार फिर, पहले की भाँति बोर्ड के संचालकों के हाथ में ही सौंप दिया गया। लंदन में एक 'बोर्ड आफ कंट्रोल' की नियुक्ति की गयी जिसके तीन सदस्य थे। इस बोर्ड का सभापति आगे चलकर 'भारत मंत्री' कहलाया। इस ऐक्ट के आधीन ईस्ट इंडिया कम्पनी के सब कार्य बोर्ड के निरीक्षण में होने लगे। बोर्ड आफ कंट्रोल की एक विशेष गुप्त कमेटी बनायी गयी जो भारत से संबंध रखने वाले सब कार्यों की देखभाल करती थी। कम्पनी के बोर्ड आफ डाइरेक्टर्स को आज्ञा दी गयी कि वे अपने कार्य-क्रम का ब्यौरा इस गुप्त कमेटी के द्वारा भेजा करें। इसी ऐक्ट के आधीन गवर्नर-जनरल की कौउन्सिल के सदस्यों की संख्या ४ से घटाकर ३ कर दी गयी।

शासन की यह प्रणाली पहले से अधिक सफल हुई, और छोटे-मोटे परिवर्तनों को छोड़कर १६वीं शताब्दी के आरम्भ तक भारत का शासन इसी प्रकार चलता रहा। सन् १७८५ ई० में जब लार्ड कार्नवालिस भारत में गवर्नर-जनरल होकर आये तो उन्होंने ब्रिटिश सरकार से अपनी काउन्सिल के निर्णयों को रद्द करने की शक्ति अपने हाथ में माँगी। यह शक्ति उन्हें दे दी गयी।

३. १७८३ का चार्टर ऐक्ट

इस ऐक्ट के अाधीन भारत में कम्पनी के कार्यकाल की अवधि और बढ़ा दी गयी। साथ ही भारत में प्रथम बार इंडियन सिविल सर्विस का आयोजन किया गया।

४. १८१३ का चार्टर ऐक्ट

सन् १६०० ई० में इंडिया कम्पनी को पूर्वी देशों में व्यापार करने का जो एकाधिपत्य दिया गया था उस पर अब ब्रिटिश पत्रों में कड़ी आलोचना होने लगी। जनता ने कहा कि स्वतन्त्र व्यापार के क्षेत्र में एकाधिपत्यिक (Monopoly) व्यापार का अधिकार दिया जाना उचित नहीं। सन् १८१३ के चार्टर ऐक्ट ने इसलिये कंपनी से चाय को छोड़कर और सब चीजों में व्यापार करने का एकाधिपत्य छीन लिया। इसी ऐक्ट के अाधीन, कंपनी को प्रथम बार अधिकार दिया गया कि वह भारतीयों की शिक्षा पर एक लाख रुपया व्यय कर सके।

५. १८५३ का चार्टर ऐक्ट

इस ऐक्ट ने कम्पनी के व्यापारिक कार्यों की इतिश्री कर दी और उसे केवल एक राजनैतिक संस्था का स्वरूप प्रदान कर दिया। इस ऐक्ट के अाधीन बङ्गाल का गवर्नर भारत का गवर्नर-जनरल बना दिया गया और सन् १८५४ में बंगाल प्रांत के लिए एक अलग गवर्नर की नियुक्ति कर दी गई। गवर्नर-जनरल का कार्य अब सब प्रान्तों के शासन की देखभाल करना रह गया। उसे अपने काउन्सिल के साथ सारे प्रान्तों की सरकार के लिए कानून बनाने का अधिकार भी दे दिया गया। बम्बई और मद्रास प्रान्तों के गवर्नरों की कौंसिल के हाथ से अपने प्रान्त के शासन के लिए भी कानून बनाने का अधिकार छीन लिया

गया। इसके अतिरिक्त एक और सदस्य (लॉ मैंबर) गवर्नर-जनरल की कौंसिल में बढ़ा दिया गया। आरम्भ में इस नये सदस्य को कौंसिल के निर्णयों में, दूसरे सदस्यों की भाँति, राय देने का अधिकार नहीं दिया गया। वह केवल कानून संबन्धी मामलों में ही राय दे सकता था। भारत की कौंसिल का प्रथम कानूनी सदस्य लार्ड मैकोले को बनाया गया। उसी की प्रधानता में प्रथम बार सारे भारत के लिए एक से कानून बनाने के लिये एक ला कमीशन की नियुक्ति की गयी।

६. सन् १८५३ का चार्टर ऐक्ट

कंपनी का चार्टर जब सन् १८५३ में फिर एक बार पार्लियामेंट के सम्मुख मंजूरी के लिए आया तो ब्रिटिश सरकार ने उसे दस वर्ष के लिए स्वीकार नहीं किया वरन् यह कहा कि उसका कार्यकाल केवल उस समय तक रहेगा जब तक पार्लियामेंट उसके विरुद्ध कानून न बनाये। इस ऐक्ट के आधीन और भी बहुत से परिवर्तन किये गये, उदाहरणार्थ, कंपनी के संचालकों के हाथ से उच्च सरकारी कर्मचारियों की नियुक्ति का अधिकार छीन लिया गया। 'इंडियन सिविल सर्विस' की भर्ती प्रतियोगिता के आधार पर कर दी गयी। गवर्नर-जनरल की ऐक्जीक्यूटिव कौंसिल के शासन तथा कानून सम्बन्धी कामों में भेद कर दिया गया। अब तक यह दोनों काम एक ही सभा द्वारा किये जाते थे। नये ऐक्ट के आधीन कानून बनाने का कार्य करने के लिए गवर्नर-जनरल की ऐक्जीक्यूटिव कौंसिल में ६ और सदस्य जोड़ दिये गये, साथ ही ला मेम्बर को ऐक्जीक्यूटिव कौंसिल का, दूसरे सदस्यों की भाँति, साधारण सदस्य भी घोषित कर दिया गया।

सन् १८५७ में भारत की स्वाधीनता का प्रथम युद्ध प्रारंभ हुआ। भारतीय जनता के इस विद्रोह की सारी जिम्मेदारी कंपनी के दूषित प्रबन्ध पर लगायी गई। इस विद्रोह ने कंपनी के भाग्य पर सदा के लिए ताला डाल दिया। भारतीय जनता ही नहीं, अंग्रेजी जनता ने भी इस विद्रोह के पश्चात् कंपनी को उठा लेने के लिए भारी आंदोलन किया और पार्लियामेंट को जनता की पुकार के सामने झुकना पड़ा। अतः सन् १८५८ में संपूर्ण भारत ब्रिटिश सरकार के आधीन हो गया।

७. १८५८ का ऐक्ट

इस ऐक्ट द्वारा भारतवर्ष की सरकार का सारा शासन प्रबन्ध सीधा ब्रिटिश पार्लियामेंट को सौंप दिया गया। ब्रिटिश पार्लियामेंट के एक मंत्री 'सैक्रेटरी आफ स्टेट' को वह सभी अधिकार सौंप दिये गये जो अब तक बोर्ड आफ कंट्रोल के हाथ में थे। सेक्रेटरी आफ स्टेट की सहायता के लिये एक १५ सदस्यों की कौंसिल बना दी गयी जिसमें कम से कम ६ सदस्य ऐसे होने थे जो दस वर्ष तक भारत में रह चुके हों अथवा नौकरी कर चुके हों। इन सदस्यों को पार्लियामेंट में बैठने अथवा राय देने का अधिकार नहीं दिया गया। 'भारत मंत्री' अपनी कौंसिल का सभापति होता था। कौंसिल की राय को मानना उसके लिए अनिवार्य न था। वह केवल उन्हीं मामलों में अपनी कौंसिल की राय पर चलता था जिसमें भारतीय खजाने से रुपया खर्च करने का प्रश्न हो या इंडियन सिविल सर्विस संबन्धित कोई विषय हो। बाकी सभी मामलों में कौंसिल की राय उसके लिये बाध्य नहीं थी। इस प्रकार १८५८ के ऐक्ट ने भारत के शासन में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं किया।

८. महारानी विक्टोरिया की घोषणा

इस ऐक्ट के पास होने के पश्चात् महारानी विक्टोरिया की ओर से एक घोषणा की गई, जिसमें ब्रिटिश सरकार की नीति के आवश्यक सिद्धान्तों को खोल कर समझाया गया और भारत की जनता और राजाओं को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न किया गया।

इस घोषणा में कहा गया कि "ईश्वर के आशीर्वाद से जब देश में आन्तरिक शान्ति स्थापित हो जायगी तो हमारी हार्दिक इच्छा है कि भारत की सर्वोत्मुखी उन्नति के लिए फिर से प्रयत्न किया जाय। जनता के हित के लिए सार्वजनिक सुविधाएँ प्रदान की जायँ। सरकार का प्रबन्ध सारी जनता के हित की भावना से किया जाय। जनता का हित ही हमारा हित हो, उसकी संतुष्टि में ही हम अपनी सुरक्षा और उसकी कृतज्ञता में ही हम अपना गौरव अनुभव करें। हमारी यह भी इच्छा है कि जहाँ तक हो हमारी सारी प्रजा चाहे वह किसी भी वंश अथवा धर्म से संबन्ध रखती हो, बिना किसी भेद भाव के हर प्रकार की सरकारी नौकरी अपनी शिक्षा तथा योग्यता के अनुसार प्राप्त कर

सके। हमारे सारे सरकारी कर्मचारियों को कड़ी आज्ञा है कि वह हमारी प्रजा के धार्मिक विचारों अथवा विश्वास में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करें। हमारी यह इच्छा नहीं है कि हम अपने साम्राज्य की और अधिक सीमा बढ़ायें। हम देशी राजाओं की मान-मर्यादा का उतना ही आदर करेंगे जितना अपना"।

महारानी की यह घोषणा एक बहुत बड़ा महत्त्व रखती थी। इसमें केवल एक ही दोष था और वह यह कि भारतवासियों को कोई राजनैतिक अधिकार प्रदान करने की घोषणा नहीं की गई और न उन्हें देश के शासन में कोई उत्तरदायी भाग ही दिया गया। भारतीय जनता में शनैः शनैः राजनैतिक जाग्रति फैल रही थी। वह साधारण मन बहलाव की सुविधाओं से संतुष्ट नहीं हो सकती थी। वह चाहती थी कि उसे कुछ ठोस राजनैतिक अधिकार प्रदान किये जायँ। इसीलिये जब १८६१ में प्रथम कौंसिल ऐक्ट बना जिसका वर्णन आगे किया जायगा और उसमें केवल मुट्ठी भर भारतवासियों को कौंसिल में बैठ कर प्रश्न आदि पूछने की सुविधा प्रदान की गई, तो इससे जनता को किसी प्रकार का सन्तोष नहीं हुआ। अनेक कारणों से भारतीय जनता में ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध लहर दौड़ रही थी। इन कारणों में भारतीय एकता की स्थापना, पश्चिमी शिक्षा प्रणाली, यूरुप के देशों के इतिहास का ज्ञान, स्वतंत्रता और प्रजातन्त्र के नये आदर्शों का भान, तथा सन् १८८५ में इंडियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना मुख्य थीं।

९. १८६१ का इंडियन कौंसिल ऐक्ट

भारत में ब्रिटिश राज्य के इतिहास में १८६१ का वर्ष बड़े महत्त्व का है। इस वर्ष में ही भारतवासियों को प्रथम बार कौंसिल के कार्यक्रम में भाग लेने की आज्ञा दी गई। १८६१ के ऐक्ट का उद्देश्य १८५३ के चार्टर ऐक्ट के दोषों को दूर करना था, जिसके द्वारा प्रांतीय विधान सभाओं को तोड़ कर केन्द्र में मिला दिया गया था।

इस ऐक्ट के द्वारा १८६१ में बम्बई और मद्रास में, १८६२ में बङ्गाल में, और १८८६ और १८६७ में क्रमशः पश्चिमोत्तरी प्रांत और पञ्जाब के लिये स्थानीय विधान सभाएँ बना दी गईं। इन विधान सभाओं में चार से आठ तक सदस्य थे जिसमें कम से कम आधे गैर सरकारी भारतीय होते थे, जिनकी

नियुक्ति गवर्नर महोदय द्वारा की जाती थी। स्थानीय विधान सभाओं को ऐसे विषयों पर कानून बनाने का अधिकार नही था जिन पर सारे भारतवर्ष के लिये एक सी ही व्यवस्था की आवश्यकता थी जैसे कर लगाना, सिक्का चलाना, दन्ड विधान बनाना आदि। प्रांतीय सभा में कोई भी बिल प्रस्तुत करने के लिये गवर्नर-जनरल की 'पूर्व' आज्ञा आवश्यक थी। इसके पश्चात्, बिल पास हो जाने के पश्चात् भी वह उस समय तक कानून का रूप धारण नहीं कर सकता था जब तक गवर्नर-जनरल उस पर हस्ताक्षर न कर दें। इस प्रकार १८६१ के ऐक्ट के अनुसार स्थानीय विधान सभाओं को कोई विशेष अधिकार नहीं दिये गये, उन्हें केवल शासन के कार्य का अनुभव प्राप्त करने का अवसर प्रदान किया गया।

इसी ऐक्ट के आधीन केन्द्र में एक पाँचवा अर्थ सदस्य गवर्नर-जनरल की ऐक्जीक्यूटिव कौंसिल में बढ़ा दिया गया। व्यवस्थापिका सभा में भी कुछ और सदस्य बढ़ाये गये। ऐक्ट में कहा गया कि जिस समय गवर्नर-जनरल की ऐक्जीक्यूटिव कौंसिल कानून बनाये तो उसमें कम से कम ६ और अधिक से अधिक १२ और सदस्य जोड़े जाँय। इन सदस्यों में कम से कम आधे ऐसे होने चाहिये जो गैर सरकारी सदस्य हों। गैर सरकारी सदस्यों में कुछ ऐसे सदस्यों का भारतीय होना भी आवश्यक कर दिया गया। ऐसे सभी सदस्यों को जो गवर्नर-जनरल की ऐक्जीक्यूटिव कौंसिल में कानून बनाने के कार्य में सहायता देते थे, दो वर्ष के लिये नियुक्त किया जाता था। सभी कानूनों के लिये गवर्नर-जनरल की स्वीकृत आवश्यक रक्खी गई। भारत मंत्री को भी अधिकार दिया गया कि वह यदि चाहें तो गवर्नर-जनरल द्वारा स्वीकृत कानूनों को रद्द कर सकते हैं।

आलोचना—इस ऐक्ट की धाराओं को ध्यान से समझने पर प्रतीत होता है कि भारतवासियों के हाथ में कोई महत्त्वपूर्ण अधिकार नहीं दिये गये। व्यवस्थापिका सभा कोई अलग संस्था नहीं बनाई गयी, गवर्नर-जनरल की ऐक्जीक्यूटिव कौंसिल में ही कुछ थोड़े से मनोनीत सदस्यों को जोड़कर, जिनमें अधिकतर अभारतीय थे, वह संस्था बना दी गई। इस सभा में एक भी निर्वाचित भारतवासी न था और इसलिये वह सरकार की मनमानी कार्यवाही पर किसी भी प्रकार की रोक नहीं लगा सकती थी।

१८६१ के सुधारों ने भारतीयों के किसी भी वर्ग को संतुष्ट नहीं किया। अतः दस वर्ष पश्चात् समस्त भारतीय जनता द्वारा अँगरेजों के हाथों से अधिकार प्राप्त करने के लिए व्यवस्थित आन्दोलन किया गया। इस आंदोलन में बहुत सी हिन्दुस्तानी संस्थाओं, जैसे ब्रिटिश इंडियन एसोशियेशन, बंगाल नेशनल लीग, बंबई प्रेसीडेंसी, एसोशियेशन इत्यादि ने भाग लिया। सन् १८८५ में 'इंडियन नेशनल कांग्रेस' की स्थापना भी कर दी गई। इन अलग-अलग संस्थाओं के आंदोलन के फलस्वरूप सन् १८९२ में एक नया ऐक्ट पास किया गया जिसका नाम लार्ड क्रास का इंडियन कौंसिल ऐक्ट आफ १८९२ (Lordcross's Indian Council Act of 1892) था।

१०. १८९२ का इन्डियन कौंसिल ऐक्ट

इस ऐक्ट के द्वारा इंपीरियल लैजिस्लेटिव कौंसिल की सदस्यता और बढ़ा दी गई। सन् १८६१ के ऐक्ट के मातहत इस कौंसिल में नामजद प्रतिनिधियों की अधिक से अधिक संख्या १२ थी। यह संख्या अब बढ़ाकर १६ कर दी गयी। स्थानीय विधान सभाओं के सदस्यों की संख्या भी बढ़ा दी गई। बंबई और मद्रास प्रांतों में सदस्यों की संख्या २०, संयुक्त प्रान्त में १५, और पञ्जाब और बर्मा में ९ कर दी गई। इस ऐक्ट ने गैर सरकारी सदस्यों के सरकार की आलोचना करने के अधिकारों में भी बढ़ोत्तरी कर दी। उन्हें कौंसिल में प्रश्न पूछने का अधिकार दे दिया गया। वार्षिक बजट भी कौंसिल के सामने रक्खा जाने लगा। परन्तु, गैर सरकारी सदस्य उस पर केवल अपनी सम्मति ही प्रगट कर सकते थे, उसमें न किसी प्रकार की घटत-बढ़त ही कर सकते थे और न वोट ही दे सकते थे। 'काम रोको प्रस्ताव' प्रस्तुत करने का अधिकार भी सदस्यों को नहीं दिया गया। चुनाव की प्रणाली इस ऐक्ट के आधीन भी स्वीकार नहीं की गई। केन्द्रीय और प्रान्तीय विधान सभाओं—दोनों में ही, सदस्यों को विभिन्न संस्थाओं जैसे चैंबर्स आफ कामर्स, कारपोरेशन, जिला बोर्ड, विश्वविद्यालय, जमींदारी सभा, इत्यादि की सिफारिश पर नामजद किया जाता था। यह सिफारिशें भी गवर्नर-जनरल मानने के लिये बाध्य नहीं था। वह उनके विरुद्ध भी सदस्यों को नामजद कर सकता था।

आलोचना—व्यवस्थापिका सभाओं के ये मनोनीत सदस्य जिनके हाथ में

किसी भी प्रकार के वास्तविक अधिकार नहीं थे भारत की जनता के किसी भी भाग को संतुष्ट नहीं कर सके। अतः ब्रिटिश शासन के विरुद्ध भारतीय जनता में असंतोष बढ़ने लगा। इस समय तक कांग्रेस भी पूरी शक्ति के साथ काम करने लगी थी। लार्ड करजन द्वारा किये गये बंगाल विभाजन ने असंतोष की आग को और भी भड़का दिया। ब्रिटिश सरकार ने इस असंतोष को गोली, बन्दूक और बर्बरतापूर्ण व्यवहार से दबाना चाहा; परन्तु इसका फल विपरीत ही हुआ। स्थान-स्थान पर आतंककारी घटनाएँ घटने लगीं। बम और पिस्तौल की संस्थाओं ने जन्म लिया। जब स्थिति सँभाल में न आयी तो ब्रिटिश सरकार ने सोचा कि भारतवर्ष के उदार दलों को सन्तुष्ट करने के लिये उन्हें थोड़े से सुधार दे दिये जाँय। इसी समय भारतवर्ष के सौभाग्य से सन् १९०५ के अन्त में इंगलैंड की सरकार में एक परिवर्तन हुआ जिसमें टोरियों के स्थान पर उदार-दलीय (Liberal) सरकार की स्थापना हो गई। इस सरकार में लार्ड मोर्ले भारत मंत्री बने। वायसराय भी बदल दिये गये, उनके स्थान पर लार्ड मिंटो को गवर्नर-जनरल नियुक्त किया गया। वह एक वयोवृद्ध, उदार हृदय राजनीतिज्ञ थे। इनके शासन में एक कमेटी बैठाई गई जिसको भारतीय शासन में सुधार पेश करने का काम सौंपा गया। इस कमेटी की सिफारिशों पर भारत में मिंटो-मोर्ले सुधारों (Minto-Morley Reforms) की घोषणा की गई।

११. १९०९ का इंडियन कौंसिल ऐक्ट

इस ऐक्ट ने केन्द्रीय और प्रान्तीय विधान सभाओं का पुर्नसङ्गठन किया, और उनमें गैर सरकारी सदस्यों की संख्या बढ़ा दी। इंपीरियल कौंसिल के सदस्यों की संख्या बढ़ाकर ६० कर दी गई जिसमें ३३ मनोनीत और २७ निर्वाचित रक्खे गए। मनोनीत सदस्यों में २८ सरकारी और ५ गैर सरकारी थे। निर्वाचन की प्रणाली प्रत्यक्ष नहीं वरन् अप्रत्यक्ष (Indirect) रक्खी गई। बंबई, बंगाल तथा मद्रास के बड़े प्रान्तों की विधान सभाओं के सदस्यों की संख्या ५० और शेष सब की ३० नियत कर दी गई। केन्द्रीय विधान सभा की भाँति प्रान्तों की विधान सभाओं में सरकारी सदस्यों का बहुमत नहीं रक्खा गया। गवर्नर-जनरल की ऐक्ज़ीक्यूटिव कौंसिल तथा बंगाल मद्रास, और बंबई की गवर्नर की कौंसिल में एक भारतवासी को नियुक्त करने

की अनुमति दे दी गई। गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी समिति के सबसे पहले भारतीय सदस्य, लार्ड सिनहा नियुक्त किये गये। दो भारतवासियों को भारत मंत्री की कौंसिल का भी सदस्य नियुक्त किया गया।

इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल के अधिकारों की सीमा बढ़ा दी गई। उसे बजट पर बहस करने का अधिकार दे दिया गया। सदस्यों को पूरक प्रश्न करने की भी अनुमति प्रदान कर दी गई। जनता के हित की बातों पर पूरे विचार विमर्श की भी आज्ञा दे दी गई।

आलोचना—परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो इस ऐक्ट के द्वारा भी कोई वास्तविक शक्ति भारतवासियों के हाथ में नहीं दी गयी। गवर्नर-जनरल की ऐक्जोंक्यूटिव कौंसिल का विधान सभा पर अब भी पहिले जैसा ही नियंत्रण था। इसके अतिरिक्त इस ऐक्ट द्वारा भारत में साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली की वह दूषित प्रथा लागू कर दी गई जिसके कारण भारत के दो टुकड़े हुए और सारे देश का सामाजिक जीवन अस्तव्यस्त हो गया।

१२. महायुद्ध और मौन्टेग्यू की घोषणा

सन् १६१४ में प्रथम महायुद्ध छिड़ गया। इस समय ब्रिटिश सरकार ने घोषणा की कि वह प्रजातंत्र, न्याय, आत्मनिर्धारण के सिद्धान्त तथा स्वतंत्रता की रक्षा के लिए युद्ध कर रही है। इस समय भारतवासियों ने कहा, "इस महायुद्ध में हम भी अपना बहुमूल्य रक्त बहा रहे हैं, हमारे देश में भी वही सिद्धान्त लागू किये जायँ जिसके लिए युद्ध लड़ा जा रहा है, अर्थात् हमें स्वतंत्रता का अधिकार प्राप्त हो।" भारतवासियों की इस माँग को ध्यान में रखकर और साथ ही भारतीय जनता के उस बलिदान को देखते हुए जो इसने महायुद्ध में किया था, तत्कालीन भारत मंत्री ने २० अगस्त, १६१७ को हाउस आफ कौमन्स में, ब्रिटिश सरकार की ओर से एक वक्तव्य दिया जिसमें उन्होंने भारत के प्रति अंग्रेजी शासन की नीति को स्पष्ट करके बतलाया। यह घोषणा इस प्रकार थी :—

"ब्रिटिश सरकार की नीति जिससे भारत सरकार पूर्ण रूप से सहमत है, यह है कि भारतवासियों को शासन के हरएक विभाग में उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ भाग दिया जाय, और ऐसी संस्थाओं को प्रोत्साहन दिया जाय जो

स्वायत्त शासन के कार्य में लगी हुई हैं, जिससे भारत में शनैः शनैः एक उत्तरदायित्वपूर्ण शासन की नींव रक्खी जा सके और वह ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत रहकर स्वतंत्र रूप से काम कर सके।"

इस घोषणा को देखने से प्रतीत होगा कि यद्यपि यह घोषणा ब्रिटिश सरकार के दृष्टिकोण में एक भारी परिवर्तन की परिचायक थी; परन्तु फिर भी इससे भारत के शासन में कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ा। कारण, इस घोषणा में केवल ब्रिटिश सरकार का भारत के प्रति क्या ध्येय है यह बतलाया गया था, और इस ध्येय की पूर्ति में कितना समय लगेगा, यह कुछ नहीं कहा गया। इस घोषणा के फलस्वरूप भारतीय विधान में कुछ सुधारों की घोषणा तो अवश्य की गयी; परन्तु वह सुधार जनता की दृष्टि में पूर्णरूप से अपर्याप्त थे।

सन् १६१७ के शीतकाल में मौन्टेग्यू भारत में आये और उन्होंने लार्ड चैम्सफ़ोर्ड के साथ मिलकर समस्त भारत का भ्रमण किया। उनसे बहुत से शिष्टमंडलों ने भेंट की और उन्हें बहुत से मानपत्र दिये गये। सन् १६१८ ई० में उन्होने मिलकर ब्रिटिश पार्लियामेंट को एक रिपोर्ट पेश की जिसका नाम 'मौन्ट-फोर्ड रिपोर्ट' पड़ा, और इसी के आधार पर सन् १६१६ का गवर्नमेंट आफ इंडिया ऐक्ट पास किया गया।

१३. सन् १९१९ का गवर्नमेंट आफ इण्डिया ऐक्ट

इस ऐक्ट द्वारा केन्द्रीय सरकार की आकृति बिलकुल बदल दी गयी, और प्रान्तों में द्वैध शासन प्रणाली (Dyarchy) का आरम्भ किया गया। इन कानून के मुख्य अंगों का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है:—

गृह सरकार (Home Government)—(१) लन्दन स्थित भारत मंत्री (Secretary of State for India) का वेतन अभी तक भारत के कोष से दिया जाता था, परन्तु इस ऐक्ट के द्वारा वह भार अब इंगलैंड के कोष पर डाल दिया गया। उसकी परिषद् (Council) के सदस्यों की संख्या ८ से लेकर १२ तक कर दी गई। भारत सरकार पर उसके शासनाधिकार वैसे ही रहे, परन्तु उसे अपने अधिकार केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों के हवाले करने की शक्ति दे दी गई।

(२) भारत के हाई कमिश्नर का एक नया कार्यालय लन्दन में खोल दिया गया और उसका वेतन तथा व्यय भारत सरकार पर डाला गया।

केन्द्रीय शासन—(३) केन्द्र में एक भवन वाली इंपीरियल लैजिस्लेटिव कौंसिल के स्थान पर द्विभवनीय व्यवस्थापिका सभा बना दी गई। उच्च भवन का नाम राज्य परिषद् (Council of State) और निम्न भवन का नाम विधान सभा (Legislative Assembly) रक्खा गया। परिषद् के ६० और विधान सभा के १४५ सदस्य नियत किये गये। इन सभाओं के अधिकार भी बढ़ा दिये गये। उन्हें कानून बनाने, प्रश्न करने, तथा प्रस्ताव पास करने की शक्ति दे दी गई। कुछ प्रतिबन्धों के आधीन उन्हें बजट के कुछ अंशों पर भी मत देने का अधिकार दे दिया गया, यद्यपि राजस्व संबंधी अन्तिम शक्ति वायसराय के हाथ में ही रही। विधान सभा की अवधि ३ वर्ष और राज्य परिषद् की ५ वर्ष रक्खी गई।

(४) गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी के सदस्यों की संख्या बढ़ाकर ८ कर दी गई। इनमें से ३ सदस्य भारतीय और ३ सदस्य ऐसे रक्खे गये जो कम से कम १० वर्ष तक किसी उच्च सरकारी पद पर काम कर चुके हों और एक सदस्य इंगलैंड या भारत के हाईकोर्ट का बैरिस्टर रह चुका हो।

गवर्नर-जनरल को अधिकार दिया कि विशेष परिस्थितियों में वह अपने विशेषाधिकारों से कार्यकारिणी के सदस्यों की सम्मति को अस्वीकार कर सके। गवर्नर-जनरल की कौन्सिल के सदस्यों में कार्य का विभाजन इस प्रकार किया गया।

(१) राजनीतिक सदस्य (गवर्नर-जनरल) (२) रक्षा सदस्य (सेनापति) (३) राजस्व सदस्य, (४) व्यापार सदस्य, (५) न्याय सदस्य, (६) उद्योग तथा श्रम सदस्य, (७) यातायात सदस्य तथा (८) शिक्षा और स्वास्थ्य सदस्य।

प्रान्तीय शासन—(५) प्रान्तीय विधान सभाओं में भी सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गई और यह निश्चित किया गया कि कम से कम ७० प्रतिशत सदस्य निर्वाचित हों। उत्तर प्रदेश (यू० पी०) में १२३ सदस्य नियुक्त किये गये जिनमें से १०० चुनाव द्वारा और २३ गवर्नर द्वारा नामजद होते

थे। विधान सभाओं के अधिकार भी बढ़ा दिये गये और मतदाताओं की संख्या भी।

(६) गवर्नर की कार्यकारिणी (Executive) में आंशिक उत्तरदायी शासन अर्थात् द्वैध शासन (Dyarchy) प्रारंभ किया गया। इसके अनुसार प्रशासन के दो भाग किये गये। (१) रक्षित (Reserved) विभाग और (२) हस्तान्तरित (Transferred) विभाग। रक्षित विभागों का शासन तो राज्यपाल (गवर्नर) अपनी कार्यकारिणी की सहायता से करते रहे। उस विभाग में राजस्व (Revenue), न्याय (Justice) कारावास (Jail), नहर (Irrigation) तथा जङ्गलात (Forest) संबंधी महकमे थे। हस्तान्तरित विभाग में शिक्षा, स्वास्थ्य, स्थानीय स्वशासन, ग्राम सुधार, कृषि आदि का प्रबंध मंत्रिमंडल के आधीन कर दिया गया। वह मंत्री निर्वाचित सदस्यों में से लिये जाते थे। रक्षित विभागों में भी आधे के लगभग सदस्य भारतीय ही रक्खे जाते थे।

स्थानीय स्वशासन—नगरपालिकाओं (Municipalities) और जिला मंडलियों (District Boards) को अधिक अधिकार दे दिये गये। उनमें भी निर्वाचित सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गई और प्रधान भी निर्वाचित नियत किये गये। मतदाताओं की भी संख्या बढ़ा दी गई।

विधान की आलोचना—मान्टफोर्ड के सुधारों को समस्त भारतवासियों ने असंतोषजनक और अपर्याप्त पाया। युद्ध में सहायता के बदले जो भारतवासी अंग्रेजों से बहुत कुछ अधिकार पाने की आशा लगाये बैठे थे उनकी आशाओं पर पानी फिर गया। क्षोभ और क्रोध की ज्वाला रौलट ऐक्ट पास होने और जलियाँ वाला बाग की हत्याओं से और भी भड़क उठी। पंजाब में मार्शल ला और खिलाफत आन्दोलन ने जलती आग पर तेल का काम किया। इस प्रकार कांग्रेस ने व्यवस्थापिका सभाओं का बहिष्कार कर के देशव्यापी 'असहयोग आन्दोलन' आरंभ कर दिया। इसके शान्त होने पर श्री मोतीलाल नेहरू और चितरंजन दास की अध्यक्षता में स्वराज्य पार्टी बनाई गई जिससे व्यवस्थापिका सभाओं के अन्दर से भी विरोध की

नीति पर काम किया जा सके। तदनन्तर स्वतंत्र उपनिवेश (Dominion Status) की माँग की गई।

१४. साइमन कमीशन

सन् १९१९ के ऐक्ट में १० वर्ष के पश्चात् एक शाही कमीशन की नियुक्ति का आयोजन किया गया था जो कि भारत जाकर नये शासन के हानि-लाभ की जाँच करता और शासन विधान में परिवर्तन के साधन रखता। सन् १९२७ में अर्थात् निश्चित समय से दो वर्ष पहले ही सर जान साइमन की अध्यक्षता में यह कमीशन भेजा गया। परन्तु, इस कमीशन का कोई भी सदस्य भारतीय नहीं था, इसलिए भारतवासियों ने इसका पूर्ण रूप से बहिष्कार किया।

१५. प्रथम गोलमेज सम्मेलन (१२ नवम्बर १९३० से जनवरी सन् १९३१ तक)

इसी समय इङ्गलैंड के शासक मंडल में परिवर्तन हुआ। अनुदार पार्टी (Conservative) के स्थान पर मजदूर (Labour) दल के हाथ में राज्य-सत्ता आ गई। उसने भारतीयों से विचार-विनिमय करने के लिए लंदन में एक गोलमेंज सम्मेलन बुलाया। परन्तु सम्मेलन बुलाते समय यह घोषणा नहीं की गई कि भारत को स्वतंत्र उपनिवेश बना दिया जायगा। इसलिए कांग्रेस ने इसका बहिष्कार करके देश-व्यापी असहयोग आन्दोलन आरंभ कर दिया।

यह आंदोलन बड़ा सफल हुआ और सहस्रों सत्याग्रही जेलों में गये। तो भी लंदन में नवम्बर १९३० में सम्मेलन हुआ जिसमें १३ प्रतिनिधि राजवाड़ों के और ५७ ब्रिटिश भारत के सम्मिलित हुए। कांग्रेस का कोई प्रतिनिधि इस सम्मेलन में शामिल नहीं हुआ। सम्मेलन ने निर्णय किया कि भारत में संघ शासन (Federation) बनाया जाय और विशेष प्रतिबन्धों के साथ केन्द्र में उत्तरदायी शासन स्थापित किया जाय।

सम्मेलन के अनन्तर, श्री जयकर और सर तेज बहादुर सप्रू के प्रयास से कांग्रेस और ब्रिटिश सरकार के बीच एक सन्धि कराई गई जिसे 'गांधी-इरविन समझौता' कहते हैं। इस सन्धि द्वारा सब सत्याग्रही जेल से मुक्त कर दिये गये

और गांधी जी ने सितम्बर सन् १९३१ में दूसरी गोलमेज सभा में भाग लेने का निश्चय किया।

१६. दूसरा गोलमेज सम्मेलन (७ सितम्बर से दिसम्बर १८ दिसम्बर १९३१ तक)

जब दूसरा सम्मेलन हुआ तो इङ्गलैण्ड में मजदूर दल की सरकार के स्थान पर एक मिलीजुली सरकार बन गई थी जिसमें प्रधान मंत्री तो पूर्ववत् रैमजे मैकडानल्ड ही थे परन्तु मंत्रियों की अधिकतर संख्या अनुदार (Conservative) दल के सदस्यों की थी। भारत सचिव के पद पर भी उदार दलीय सर वैजवुड बैन के स्थान पर एक कट्टरपंथी अनुदार दलीय सर सैमुएल होर नियत हो गये थे। महात्मा गांधी के उपस्थित होने पर भी यह सम्मेलन सफल न हो सका; कारण, चालाक अंग्रेजों ने अपने मनमाने चुने हुए भारतीय प्रतिनिधियों के सम्मुख साम्प्रदायिक समस्या रख दी और उनसे कहा कि पहिले तुम इसे सुलझा लो, फिर और बातों पर विचार होगा। फल यह हुआ कि साम्प्रदायिक नेता अंग्रेजों की पट्टी पढ़कर किसी भी समझौते पर न पहुँच सके और सम्मेलन असफल रहा।

महात्मा गांधी अति निराश होकर भारत लौटे। यहाँ उन्होंने देखा कि समस्त भारत में लार्ड विलिंगडन की पुलिस, फौज और गोलियों का शासन चल रहा है और हजारों देशभक्त जेलों में ठूँस दिये गये हैं। कुछ काल पश्चात् महात्मा गांधी को स्वयं भी कारागार में ढकेल दिया गया।

१७. साम्प्रदायिक निर्णय (अगस्त १९३२)

जब गोलमेज सम्मेलनों में साम्प्रदायिक नेता आपस में किसी प्रकार का समझौता न कर सके तो प्रधान मंत्री श्री रैमजे मैकडानल्ड ने साम्प्रदायिक पंचाट की घोषणा करने का कार्य स्वयं सँभाला। श्री मसानी ने लिखा है कि "इस निर्णय को पंचाट (Award) कहना अशुद्ध है। पंचाट तो पंचायत के फैसले को कहते हैं और वह भी तब जब झगड़ेवाले दल स्वयं पंचायत का निर्माण करें। इस मामले में तो झगड़े का निर्णायक अंग्रेजी प्रधान मंत्री को किसी ने बनाया ही नहीं था। और, न गोलमेज सभा के साम्प्रदायिक नेता ही सम्प्रदायों के चुने हुए प्रतिनिधि थे। वह तो ब्रिटिश सरकार द्वारा ही चुने हुए

उनके पिट्ठू थे। इसलिये यदि वह कोई सरपंच-नामा प्रधान मंत्री के नाम लिख देते तो भी उसका निर्णय भारत को मान्य न होता। परन्तु यहाँ तो ऐसा भी कोई सरपंचनामा रैमजे मैकडानल्ड के लिए नहीं लिखा गया था।"

साम्प्रदायिक पंचाट ने भारतीयों को मतों के आधार पर विभक्त करके आपस में लड़ने-भिड़ने को प्रोत्साहित किया और धर्मान्धता तथा मिथ्या जातीयता के प्रदर्शन को भारी उत्तेजना दी।

पंचाट द्वारा विधान सभाओं में सीटों का विभाजन इस प्रकार किया गया:

साधारण ७०१, हरिजन ७१, पिछड़े हुए क्षेत्र ७०, सिख ३५, मुसलमान ४८६, ईसाई २१, एंग्लो इंडियन १२, योरुपियन २५, व्यापार व उद्योग के प्रतिनिधि ४५, जमींदार ३५, विश्वविद्यालय ८, तथा श्रमिक ३८।

१८. पूना का समझौता (१९३२)

साम्प्रदायिक पंचाट ने अछूतों को पृथक निर्वाचन का अधिकार देकर उन्हें हिन्दू समाज से विभक्त कर दिया था। महात्मा गांधी ने इस अन्याय का मुकाबिला करने के लिये आमरण व्रत धारण करने का निश्चय किया। व्रत धारण करने के पश्चात् जब उनकी दशा अत्यन्त चिन्ताजनक हो गई तो हिन्दू और अछूत नेताओं ने मिलकर पूना में एक समझौता किया जिसके द्वारा अछूतों को ७१ स्थानों के बजाय १४८ स्थान दे दिये गये परन्तु उनको हिंदुओं से अलग रहकर नहीं उनके साथ मिलकर राय देने का अधिकार दिया गया।

इस समझौते से अछूतों के स्थान दुगुने से भी अधिक हो गये; परंतु बंगाल के हिन्दुओं के साथ इससे बड़ा अन्याय हुआ। वहाँ हिन्दुओं की समस्त सीटें ८० थीं। इसमें से ३० अछूतों के लिए सुरक्षित हो गयी और शेष के लिये भी निर्वाचन लड़ने का अधिकार उन्हें दे दिया गया। इस प्रकार विधान सभा के २५० स्थानों में से हिन्दुओं को केवल ५० से भी कम सीटें प्राप्त हुई, अर्थात् १६ प्रतिशत, जब कि उनकी जनसंख्या ४० प्रतिशत थी और वह ८० प्रतिशत कर देते थे।

१९. तीसरा गोलमेज सम्मेलन (१६ नवम्बर से २४ दिसम्बर १९३२ तक)

साम्प्रदायिक पंचाट के घोषित होने के पश्चात लंदन में तीसरी गोलमेज

कान्फ्रेंस हुई। इसमें भी कांग्रेस का कोई प्रतिनिधि सम्मिलित नहीं हुआ। पहिले सम्मेलनों की अपेक्षा यह एक छोटी सी बैठक थी जिसमें कि पूर्व निश्चित कार्यक्रम के अनुसार कुछ काम किया गया।

श्वेत पत्र (White Paper) १८ मार्च १९३३—तीसरे गोलमेज सम्मेलन की समाप्ति पर भारत में वैधानिक सुधारों के विषय में ब्रिटिश सरकार ने मार्च सन् १९३३ में एक 'श्वेत पत्र' प्रकाशित किया। इसमें वर्णित योजनाओं ने देश भर में एक निराशा तथा क्षोभ की लहर दौड़ा दी और सब पक्षों ने निश्चय किया कि वह इस योजना को स्वीकार नहीं करेंगे।

२०. संयुक्त पार्लियामेंटरी कमेटी और १९३५ का विधान

श्वेत पत्र एक बिल के रूप में ब्रिटिश पार्लियामेंट के सम्मुख रक्खा गया और उसकी जाँच के लिये सब ब्रिटिश पार्टियों की ओर से एक संयुक्त समिति बना दी गई। इस कमेटी के सम्मुख राय देने तथा अपने सुझाव पेश करने के लिये कुछ भारतीय भी नियुक्त किये गये। इन भारतीय संस्थाओं ने एक मैमोरैंडम में कमेटी के सम्मुख कुछ न्यूनतम माँगे रक्खीं जिनसे कि भारतवासियों को कुछ संतोष हो सकता था। परंतु भारत के गोरे शासकों को यह माँगे भी स्वीकार न हुई और अपने अन्तिम रूप में बिल और भी कलुषित बना दिया गया। २ अगस्त सन् १९३५ को पार्लियामेंट ने भारतीय विधान पास कर दिया। इसमे विशेष बात यही थी कि कहीं भी इस विधान में भारत को स्वतंत्र उपनिवेश (Dominion Status) बनाने का जिक्र तक न किया गया था।

इस विधान में ४७८ धाराएँ तथा १६ परिशिष्ट थे। ४५५ पृष्ठों पर छपे हुए इस विधान की मुख्य-मुख्य बातें यह थीं :—

(१) गृह-सरकार—इंगलैंड में स्थित गृह-सरकार के स्वरूप में इस विधान के अन्तर्गत समुचित परिवर्तन किया गया। भारत मंत्री की कौंसिल तोड़ दी गई और उसके स्थान पर एक परामर्शदाताओं की सभा बना दी गई। भारत मंत्री के अधिकारों में भी काफी कमी कर दी गई जिससे नये विधान के अंतर्गत प्रान्तों में पूर्ण उत्तरदायित्वपूर्ण और केन्द्र में आंशिक उत्तरदायी शासन का आरंभ हो सके।

(२) संघ विधान—ऐक्ट के अन्तर्गत सारे सूबों तथा रियासतों को मिला

कर एक संघ स्थापित करने की योजना रक्खी गई। इस योजना के आधीन केन्द्रीय सरकार को अधिक शक्तिशाली बनाने के लिए प्रान्तों तथा केन्द्र के आधीन कार्य का विभाजन इस प्रकार किया गया कि ५६ विषयों पर केन्द्रीय सरकार को कानून बनाने का अधिकार दिया गया, ५४ विषयों पर प्रान्तीय सरकारों को और ३६ विषय समवर्त्ती (concurrent) रक्खे गये जिन पर दोनों प्रान्तीय तथा केन्द्रीय सरकारें कानून बना सकती थीं, परंतु विरोध की दशा में केन्द्रीय कानून ही सर्वोपरि माना जाता था। बचे हुए अधिकार (Residuary powers) केन्द्र के आधीन ही रक्खे गये।

(३) केन्द्रीय शासन—केंद्रीय सरकार के आधीन एक द्वैध शासन प्रणाली (dyarchy) के आरंभ की योजना रक्खी गई। रक्षा, विदेशों से संबंध, कबाइली इलाके तथा ईसाइयों के धर्म सम्बंधी विषय रक्षित (Reserved) रक्खे गये। शेष अधिकार मंत्रियों के हाथ में सौंपे जाते थे। परंतु इन हस्तान्तरित (Transferred) विभागों में भी गवर्नर-जनरल को मंत्रियों के काम में हस्तक्षेप करने के विशेष अधिकार प्रदान किये गये।

(४) प्रान्तीय शासन—सूबों में द्वैध शासन प्रणाली का अंत करके पूर्ण उत्तरदायी शासन की नींव रक्खी गई। सब अधिकार मंत्रियों के हाथ में सौंप दिये गये। परंतु, केंद्र की भाँति प्रान्तों में भी गवर्नरों के हाथ में विशेष अधिकार दिये गये जिससे वह मंत्रियों के काम में मनमाना हस्तक्षेप कर सकें। कुछ प्रान्तों में इस ऐक्ट के आधीन दो भवन बना दिये गये। नामजद सदस्यों की संख्या बहुत कम कर दी गई।

(५) मताधिकार—१६१६ के विधान में भारत की केवल ३% जनता को मत देने का अधिकार दिया गया था। नये विधान में यह संख्या बढ़ा कर १३% कर दी गई और बहुत सी स्त्रियों को राय देने का अधिकार दे दिया गया।

(६) नये प्रान्त—ऐक्ट के आधीन बर्मा भारत से अलग कर दिया गया। सिंध तथा उड़ीसा के दो नये सूबे बना दिये गए और कुल प्रान्तों की संख्या ११ निश्चित कर दी गई।

(७) फेडरल कोर्ट तथा रिजर्व बैंक की स्थापना—संघ शासन होने

के कारण नए विधान के अंतर्गत भारत में एक संघीय न्यायालय तथा रिजर्व बैंक की स्थापना की गई। इन दोनों संस्थाओं का एक संघीय विधान के अंतर्गत होना नितान्त आवश्यक है।

२१. १९३५ के संविधान पर कार्य

नये संविधान के अन्तर्गत सन् १९३७ में प्रान्तों में चुनाव हुए। इन चुनावों में भारत के ७ प्रान्तों में कांग्रेस को बहुमत प्राप्त हुआ। कांग्रेस १९३५ के विधान से बिल्कुल असंतुष्ट थी और वह किसी भी दशा में उसे स्वीकार करना न चाहती थी; परन्तु विरोधी दलों को सरकार की सत्ता हड़प करने से रोकने के लिये उसने चुनावों में भाग लिया और फिर प्रान्तों के गवर्नरों के आश्वासन देने पर कि वह मंत्रियों के काम में अनुचित हस्तक्षेप नहीं करेंगे उसने ८ प्रान्तों में अपने मंत्रि-मन्डल बनाए। शेष प्रान्तों में स्वतन्त्र दलों की सरकारें बन गईं। इस प्रकार १९३५ के विधान का प्रांतीय भाग कार्यान्वित हो गया परन्तु संघीय भाग चालू न हो सका। इसके दो मुख्य कारण थे— एक तो यह कि केन्द्रीय शासन व्यवस्था इतनी असन्तोषजनक थी, और उसके अंतर्गत मंत्रियों को इतने कम अधिकार सौंपे गए थे, कि भारत की प्रत्येक राजनीतिक पार्टी ने उसका विरोध किया और उसे स्वीकार करने से इन्कार कर दिया, और दूसरे यह कि रियासतों ने भी संघीय शासन में सम्मिलित होना स्वीकार नहीं किया। प्रान्तों में कांग्रेस मंत्रिमंडलों ने बहुत प्रशंसनीय कार्य किया। उन्होंने किसानों की अवस्था सुधारने, कृषि में उन्नति करने, उद्योग-धंधों को सहायता देने, शिक्षा-प्रसार तथा मादक वस्तुओं की बिक्री को रोकने के लिए अनेक योजनाएँ बनाईं। उनका कार्य इतना अच्छा रहा कि न केवल भारतीयों ने वरन् बहुत से इंगलैंड और दूसरे देशों के राजनीतिक नेताओं ने उनके कार्य की भूरिभूरि प्रशंसा की।

२२. दूसरा महायुद्ध और भारत का स्वतंत्रता-संग्राम

सन् १९३९ में दूसरा योरूपीय युद्ध छिड़ा। ब्रिटिश सरकार ने भारत में केन्द्रीय अथवा प्रान्तीय सरकारों की राय लिए बिना ही हमारे देश को युद्ध की अग्नि में झोंक दिया। इस समय कांग्रेस ने कहा कि वह युद्ध में उस समय तक सम्मिलित होना नहीं चाहती जब तक वही सिद्धान्त जिनके लिए युद्ध लड़ा जा

रहा है भारत में भी लागू न किये जाँय अर्थात् देश को स्वतंत्र न किया जाय। ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस की यह माँग स्वीकार नहीं की। फलतः कांग्रेस मंत्रिमंडलों ने सब प्रान्तों में त्यागपत्र दे दिया और केवल पञ्जाब, बंगाल और सिंध में ही दूसरे दलों के मंत्रिमंडल काम करते रहे। शेष प्रान्तों में गवर्नरों ने वैधानिक सङ्कट की घोषणा करके शासनकार्य अपने हाथ में संभाल लिया। उसके कुछ दिन पश्चात् कांग्रेस ने वैयक्तिक सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरंभ किया।

२३. ब्रिटिश सरकार की अगस्त सन् १९४० की घोषणा

इस आन्दोलन से प्रभावित होकर ब्रिटिश सरकार ने अगस्त १६४० में एक घोषणा की जिसमें कहा गया कि "ब्रिटिश सरकार का ध्येय भारत में युद्ध के पश्चात् शीघ्रातिशीघ्र स्वतन्त्र औपनिवेशिक स्वराज्य कायम करना है। भारत का विधान भारतीयों द्वारा ही बनाया जायगा परन्तु यह विधान बनाते समय भारत सरकार को वह समस्याएँ ध्यान में रखनी पड़ेंगी जो भारत के इंगलैंड से एक दीर्घकालीन सम्बन्ध के कारण उत्पन्न हो गई है।" इस घोषणा के साथ गवर्नर-जनरल ने एलान किया कि वह अपनी कार्यकारिणी में ऐसे नये सदस्यों की नियुक्ति करने के लिये तैयार हैं जो भारतीय हितों का प्रतिनिधित्व कर सकें।

आलोचना—इस घोषणा से भारतवासियों को किसी प्रकार का भी सन्तोष नहीं हुआ, कारण गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी में कुछ सदस्यों की नियुक्ति के अतिरिक्त उन्हें वर्तमान में कोई और अधिकार सौंपने की योजना नहीं रक्खी गई थी। स्वतन्त्र औपनिवेशिक स्वराज्य देने का वचन युद्ध के पश्चात् दिया गया था। सब राजनीतिक दलों ने इसलिए गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी में अपने प्रतिनिधि भेजने से इन्कार कर दिया। परन्तु, जुलाई सन् १६४१ में ब्रिटिश सरकार ने स्वयं युद्ध से बढ़े हुए कार्य को चलाने के लिए गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी में ५ और सदस्यों की नियुक्ति कर दी। यह सदस्य किसी राजनीतिक दल का प्रतिनिधित्व नहीं करते थे और उनकी नियुक्ति से जनता को किसी भी प्रकार का सन्तोष नहीं हुआ।

२४. क्रिप्स योजना

नवम्बर सन् १६४१ में जापान महायुद्ध में शरीक हो गया। इससे युद्ध

सन्चालन की दृष्टि से भारत की स्थिति में एक बड़ा भारी अन्तर उत्पन्न हुआ। भारतीय जनता के सहयोग के बिना अब जापान के विरुद्ध बलपूर्वक युद्ध नहीं लड़ा जा सकता था। जापानियों ने बहुत शीघ्र बर्मा और सिंगापुर पर अधिकार जमा लिया और वह भारत पर आक्रमण करने की तैयारी करने लगे। ब्रिटिश सम्राट ने इस युद्ध में भारतीय जनता का सहयोग प्राप्त करने के लिए मार्च सन् १६४२ में सर स्टैफर्ड क्रिप्स को कुछ योजनाओं के साथ भारत भेजा। सर स्टैफर्ड क्रिप्स जिस योजना को भारत में लाए उसके मुख्य रूप से दो भाग थे :—

(१) युद्धोत्तर योजना—इस योजना के आधीन भारतवासियों से कहा गया कि युद्ध के पश्चात् उन्हें अपना विधान स्वयं अपनी ही चुनी हुई संविधान सभा द्वारा बनाने की आज्ञा दे दी जायगी। इस संविधान सभा में प्रान्तीय विधान सभाओं द्वारा सदस्य चुने जायेंगे जिनकी संख्या प्रान्तीय विधान सभा की कुल संख्या का $\frac{1}{10}$ भाग होगी। रियासतों को भी इस संविधान सभा में अपने प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दिया जायगा, जिनकी संख्या उनकी जनसंख्या के अनुपात से उतनी ही होगी जितनी प्रान्तों की। इस संविधान सभा को भारत के लिए मनचाहा विधान बनाने की स्वतंत्रता होगी। केवल उसमें अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा तथा ब्रिटिश सरकार से एक प्रकार के समझौते का आयोजन होगा। इस योजना में यह भी कहा गया कि यदि कोई सूबे या देशी रियासतें संविधान सभा में भाग लेने के पश्चात् यह अनुभव करेंगी कि उन्हें प्रस्तावित विधान स्वीकार नहीं है तो उन्हें इस बात की स्वतन्त्रता होगी कि वह भारतीय यूनियन से अलग रहकर अपना एक अलग स्वतन्त्र उपनिवेश बना सकें। इस प्रकार प्रथम बार ब्रिटिश सरकार ने मुस्लिम लीग की पाकिस्तान की माँग से प्रभावित होकर अपनी योजना में मुसलमानों को खुश करने के लिए भारत के टुकड़े किए जाने के लिए अपनी स्वीकृति प्रगट की।

अल्पकालीन योजना—उपरोक्त योजना पर केवल युद्ध के उपरान्त कार्य होना था। वर्तमान में भारत सरकार में परिवर्तन करने के लिए क्रिप्स योजना में केवल इतना कहा गया कि वायसराय स्वयं अपनी कार्यकारिणी के कार्य में हस्तक्षेप नहीं करेंगे। कांग्रेस चाहती थी कि वायसराय की कार्य-

कारिणी एक कैबिनेट के रूप में काम करे और गवर्नर-जनरल कार्यकारिणी के केवल एक वैधानिक अध्यक्ष हों। वह देश की रक्षा सम्बन्धी समस्याओं में भी समुचित भाग चाहती थी।

कांग्रेस की यह दोनों माँगें सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने स्वीकार नहीं कीं। फलतः समझौते की बातें भंग हो गईं और सर स्टैफर्ड क्रिप्स इंगलैंड वापिस चले गये।

काँग्रेस ने अपनी ओर से राजनीतिक अवरोध को दूर करने के लिए क्रिप्स योजना के युद्धोत्तर भाग के अत्यन्त असंतोषजनक होने पर भी उसे स्वीकार करने का प्रयत्न किया और केवल यह माँग ब्रिटिश सरकार के सम्मुख रखी कि वायसराय की कार्यकारिणी एक कैबिनेट के रूप में कार्य करे। आरंभ में सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने इस प्रकार का आश्वासन दे दिया। परंतु, फिर न जाने किन कारणों से, ब्रिटिश प्रधान मंत्री मि० चर्चिल की कोई आज्ञा न मिलने से, या किसी और कारण, वह अपने वचन से फिर गये। युद्धोत्तर योजना में भारतीय रियासतों की जनता को विधान परिषद में अपने प्रतिनिधि भेजने का अधिकार नहीं दिया गया था। यह अधिकार केवल रियासतों के राजाओं को दिया गया था जो ब्रिटिश सरकार के पिट्ठू थे और स्वतंत्र इच्छा से कार्य न कर सकते थे। युद्धोत्तर योजना का दूसरा सबसे बड़ा दोष यह था कि इसके द्वारा असंतुष्ट प्रान्तों तथा रियासतों को भारत के टुकड़े करने की आज्ञा दे दी गई। इतना होने पर भी काँग्रेस ने प्रयत्न किया कि ब्रिटिश सरकार से किसी प्रकार का समझौता हो जाय। परंतु, मि० चर्चिल की अनुदार दलीय सरकार भारतीयों को किसी प्रकार के अधिकार देना नहीं चाहती थी। उसे तो केवल संसार की जनता की आँखों में धूल झोंकने और यह बतलाने के लिए कि वह तो भारतवासियों को संपूर्ण अधिकार देने के लिए तैयार हैं; परन्तु भारतवासी स्वयं इतने निकम्मे हैं कि वह आपस में किसी प्रकार का समझौता नहीं कर सकते, सर स्टैफर्ड क्रिप्स को भारत भेजा था। इस समझौते की बातें टूटने का फल यह हुआ कि भारत में राजनीतिक क्षोभ दिन प्रति दिन बढ़ता गया और अन्त में अगस्त सन् १९४२ में भारत में प्रसिद्ध राजनीतिक क्रांति हुई।

२५. 'भारत छोड़ो' आन्दोलन

८ अगस्त सन् १९४२ को 'अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी' ने अपने बंबई के अधिवेशन में प्रसिद्ध 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पास किया। इसके पश्चात् देश में पाशविक अत्याचार, दमन, तथा हिंसा का सरकार की ओर से वह तांडव नृत्य रचा गया जिसके कारण प्रस्ताव पास होने के तुरन्त पश्चात् लाखों देशभक्त नर और नारी. जेल की कालकोठरियों में ठूँस दिये गये और हजारों नवयुवकों को गोलियों का शिकार बनाकर मौत के घाट उतार दिया गया। अपने ८ अगस्त के प्रस्ताव में काँग्रेस ने सरकार के विरुद्ध अवज्ञा आंदोलन की घोषणा नहीं की थी, वरन् प्रस्ताव में कहा गया था कि महात्मा गांधी पहिले वायसराय से मिलकर समझौते की बातचीत करेंगे। इस बातचीत के असफल होने पर ही अवज्ञा आंदोलन आरंभ होना था। परन्तु सरकार ने गांधी जी की मुलाकात की प्रतीक्षा किये बिना ही देश भर में पुलिस और फौज की गोलियों का राज्य कायम कर दिया। जनता ने भी उत्तेजित होकर सरकार की दमन नीति का हिंसा से मुकाबिला किया और हजारों पुलिस के थाने, रेलवे स्टेशन, डाक व तार-घर तथा सरकारी इमारतें आग की भेंट हो गईं।

२६. महात्मा गांधी का ऐतिहासिक व्रत

ब्रिटिश सरकार ने इन उपद्रवों की सारी जिम्मेदारी काँग्रेस के मत्थे मँढ़नी चाही और एक पुस्तक निकाल कर उसने काँग्रेस के उच्च नेताओं के विरुद्ध अनेक हिंसा संबन्धी आरोप लगाये। महात्मा गांधी को जिस समय जेल के अन्दर इस हिंसा के नग्न दृश्य का पता चला तो उन्होंने १० फरवरी सन् १९४३ से सरकार की हिंसक नीति में परिवर्तन लाने के लिये २१ दिन तक व्रत रखने का निश्चय किया। इस समाचार ने देश के अन्दर फिर एक बार राजनीतिक चेतना की लहर फूँक दी और देश के कोने-कोने में सभाओं, जुलूसों, तथा प्रस्तावों द्वारा सरकार से प्रार्थना की जाने लगी कि वह महात्मा गांधी को तुरन्त जेल से मुक्त कर दे। जिस समय महात्मा गांधी ने पूना की आगा खाँ जेल में अपने जीवन का चौदहवाँ व्रत धारण किया था तो उनकी आयु ७३ वर्ष की थी और उनके कमजोर स्वास्थ्य को देखते

हुये किसी को भी यह आशा न थी कि वह २१ दिन की घोर तपस्या से निकल कर जीवित रह सकेंगे। इसलिये सरकार पर दबाव डालने के लिये न केवल जनता ने ही आन्दोलन किया वरन् वायसराय की कार्यकारिणी के ३ सदस्यों ने भी अपने पद से त्यागपत्र दे दिया। परन्तु इस सब आन्दोलन से सरकार के सर पर जूँ तक न रेंगी। वह तो चाहती थी कि गांधीजी परलोक सिधार जाँय और सदा के लिये उनकी मुसीबत का अन्त हो जाय। परन्तु ईश्वर की कुछ और ही इच्छा थी। महात्मा गांधी इस अग्नि परीक्षा में पूरे उतरे और ३ मार्च सन् १९४३ को उनका व्रत सफलतापूर्वक समाप्त हो गया।

२७. गांधी जी की जेल से रिहाई

मई सन् १९४४ में महात्मा गांधी आगा खाँ जेल में सख्त बीमार पड़े। इस डर से कि कहीं इस बीमारी से गांधीजी का उसी प्रकार प्राणान्त न हो जाँय, जिस प्रकार उनकी धर्मपत्नी श्रीमती कस्तूरबा गांधी और महादेव भाई के उसी जेल में हुये थे सरकार ने उन्हें जेल से मुक्त कर दिया। अगस्त सन् १९४४ में भारत के गवर्नर-जनरल लार्ड लिनलिथगो इगलैंड वापस चले गये और उनके स्थान पर लार्ड वेवल की नियुक्ति की गई। इस सैनिक राजनीतिज्ञ ने भारत आकर तुरन्त बिगड़ी हुई स्थिति को सुधारने के लिये कदम उठाया और १४ जून सन् १९४५ को उसने ब्रिटिश सरकार से बात चीत करने के पश्चात् देश के राजनीतिक नेताओं के सम्मुख एक सुझाव रक्खा जो 'वेवल सुझाव' के नाम से प्रसिद्ध है।

२८. वेवल सुझाव (Wavell Offer)

लार्ड वेवल ने इस योजना में अपनी कार्यकारिणी के पुनर्संगठन की बात कही। उन्होंने कहा कि वह अपनी कार्यकारिणी में सेनापति को छोड़ कर शेष सभी सदस्य भारतीय रखने को तैयार हैं और वह भी ऐसे भारतीय जो राजनीतिक दलों के नुमाइन्दे हों और जनता का सच्चा प्रतिनिधित्व कर सके। इस प्रकार उन्होंने कहा कि प्रथम बार भारतीयों को राजस्व, गृह तथा विदेशी नीति संबंधी भागों पर अधिकार प्राप्त हो सकेगा और वायसराय की कार्यकारिणी एक मंत्रिमंडल के समान कार्य कर सकेगी। परन्तु इन सुझावों में कई दोष थे:—

(१) प्रथम यह कि इस योजना के आधीन यह कहा गया था कि सवर्ण हिंदुओं तथा मुसलमानों को गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी में बराबरी के स्थान दिये जायँगे। इसका अर्थ यह हुआ कि ७० प्रतिशत हिंदुओं को देश के शासन में उतना ही भाग मिलना था जितना कि ३६ प्रतिशत मुसलमानों को।

(२) दूसरे, लार्ड वेवल ने कहा कि उनकी कार्यकारिणी व्यवस्थापिका सभा के प्रति नहीं वरन् उनके स्वयं के प्रति उत्तरदायी होगी। वह स्वयं कार्यकारिणी के प्रधान रहेंगे. और यद्यपि दिन प्रति दिन के काम में कार्यकारिणी के निर्णयों में हस्तक्षेप नहीं करेंगे, परन्तु विशेष परिस्थितियों में ऐसा करने का उन्हें पूर्ण अधिकार प्राप्त होगा।

(३) तीसरे, कार्यकारिणी के सदस्यों की नियुक्ति किसी एक राजनीतिक दल के नेता द्वारा नहीं वरन् गवर्नर-जनरल द्वारा स्वयं की जानी थी। ऐसी दशा में कार्यकारिणी एक संयुक्त मन्त्रिमंडल की भाँति कार्य नहीं कर सकती थी।

इन दोषों के होते हुए भी काँग्रेस ने अपनी ओर से इस बात का पूरा प्रयत्न किया कि वह मुस्लिम लीग के साथ मिल कर वायसराय की कार्यकारिणी में सम्मिलित हो जाय। परन्तु, मुसलिम लीग चाहती थी कि वायसराय की कौंसिल में केवल वही मुस्लिम सदस्य शामिल किये जाँय जो लीग के सदस्य हों। काँग्रेस इस बात के लिये तो तैयार हो गयी कि मुस्लिम लीग अपनी ओर से कौंसिल के १४ सदस्यों में से अपने हिस्से के पाँच सदस्य मुसलिम लीगी ही चुन लें, परन्तु उसने यह बात नहीं मानी कि वह अपने हिस्से में से भी किसी राष्ट्रीय मुसलमान को सरकार में प्रतिनिधित्व दें। काँग्रेस केवल हिंदुओं की ही जमायत नहीं थी। उसमें हजारों मुसलमान, ईसाई तथा पारसी भी थे जिन्होंने उसके साथ मिलकर स्वतन्त्रता संग्राम में पूर्ण रूप से भाग लिया था और उसके प्रतीक रूप मौलाना आजाद उसके प्रधान थे। मुस्लिम लीग ने काँग्रेस की यह बात नहीं मानी और अंत में समझौते की बातें भंग हो गईं।

२९. आम चुनाव

शिमला सम्मेलन की असफलता के पश्चात् ब्रिटिश सरकार ने केन्द्रीय तथा प्रांतीय विधान सभाओं के लिये आम चुनाव करने की घोषणा की। इन चुनावों

को करने के पीछे ब्रिटिश सरकार का यह आशय था कि उसे मालूम हो सके कि देश में काँग्रेस, मुस्लिम लीग तथा दूसरे राजनीतिक दलों की कितनी मान्यता है। चुनावों में काँग्रेस को प्रायः सभी हिन्दू सीटों पर विजय प्राप्त हुई। मुस्लिम सीटें, सीमा प्रांत तथा पंजाब को छोड़कर, अधिकतर लीग के हाथ लगीं।

इन चुनावों के तुरन्त पश्चात् काँग्रेस ने आठ प्रांतों में अपने मंत्रिमंडल बनाये। मुस्लिम लीग केवल बंगाल और सिंध में लीगी मन्त्रिमंडल बना सकी। पंजाब में सर खिजर खाँ हयात खां तिवाना की प्रधानता में एक मिले जुले मन्त्रिमंडल का निर्माण हुआ।

३०. भारत में ब्रिटिश शिष्ट-मंडल का आगमन

जिस समय भारत में आम चुनाव हो रहे थे तो इंगलैंड में भी पार्लियामेंट के लिये नये चुनावों की घोषणा की गई। इन चुनावों में मि० चर्चिल की अनुदार सरकार हार गई और उसके स्थान पर मि० एटली ने एक मजदूर दलीय सरकार बनाई। मजदूर दल के नेता भारत के स्वतन्त्रता संग्राम का सदा से पक्ष लेते आये थे। वह चाहते थे कि भारत स्वतंत्र हो जाय। इसीलिये मि० एटली ने सरकार का कार्य-भार सँभालने के थोड़े ही दिन पश्चात् ६ दिसंबर सन् १६४५ को पार्लियामेंटरी सदस्यों का एक शिष्टमंडल भारत भेजा। इस मंडल के सदस्यों में मि० सौरेन्सन और मेजर व्याट भी थे जो पार्लियामेंट में भारत संबन्धी प्रश्नों पर विशेष रूप से रुचि लेते थे। डेढ़ महीने तक सारे भारत का दौरा करने के पश्चात्, आरंभ फरवरी सन् १६४६ में, शिष्टमंडल वापस इंगलैंड पहुँचा। वहाँ उसने पार्लियामेंट के सम्मुख अपनी रिपोर्ट पेश की। इस रिपोर्ट के फलस्वरूप मि० एटली ने १६ फरवरी सन् १६४६ को घोषणा की कि वह एक कैबिनेट-मिशन, जिसके सदस्य लार्ड पैथिक लारेंस, सर स्टैफर्ड क्रिप्स तथा मि० एलेक्जेंडर होंगे, भारत भेजेंगे। इस मिशन का कार्य यह होगा कि वह भारत के राजनीतिक नेताओं से बातचीत करके भारतीय समस्या का कोई संतोषजनक हल निकाले।

३१. मि० एटली की घोषणा

जिस समय मि० एटली ने एक कैबिनेट मिशन भारत भेजने की घोषणा की तो उन्होंने दो और महत्त्वपूर्ण बयान भी पार्लियामेंट के सम्मुख दिये।

इनमें से पहले बयान में उन्होंने कहा कि "ब्रिटिश सरकार भारतवासियों की पूर्ण स्वतन्त्रता की माँग स्वीकार करती है। जहाँ तक राष्ट्रमंडल की सदस्यता का प्रश्न है भारतवासियों को पूर्ण स्वतन्त्रता है कि वह उसका सदस्य रहना स्वीकार करें अथवा नहीं।"

दूसरे बयान में ब्रिटिश प्रधान मंत्री ने कहा कि "किसी अल्पसंख्यक जाति को बहुसंख्यक जाति की राजनीतिक माँग पर अनियमित काल तक पानी फेरने का अधिकार नहीं दिया जा सकता।" इन दोनों बयानों से भारत के राजनीतिक क्षेत्रों को अत्यंत सांत्वना मिली और वह समझने लगे कि अब वास्तव में ब्रिटिश सरकार भारतवासियों के हाथों में राज्य-सत्ता सौंपने के लिये तत्पर है।

३२. कैबिनेट मिशन (मंत्री प्रतिनिधि-मंडल का भारत में आगमन)

२ मार्च सन् १९४६ को कैबिनेट मिशन के सदस्य भारत पहुँचे और उसके तुरंत पश्चात् उन्होंने राजनीतिक दलों के नेताओं से बातचीत का कार्य-क्रम आरंभ कर दिया। ५ मई सन् १९४६ को उन्होंने काँग्रेस तथा मुस्लिम लीग के चार-चार प्रतिनिधियों का एक संयुक्त सम्मेलन शिमले में बुलाया। इस सम्मेलन में दोनों दलों के बीच किसी प्रकार का समझौता न हो सका। अन्त में १६ मई सन् १९४६ को कैबिनेट-मिशन ने स्वयं अपनी ओर से भारतीय राजनीतिक अवरोध को दूर करने के लिये कुछ सुझाव रखे। इन सुझावों का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है :—

३३. ब्रिटिश मंत्री प्रतिनिधि मंडल की अखिल भारतीय संघ के लिये योजनाएँ

प्रतिनिधि मंडल ने सर्व प्रथम इस बात का प्रयत्न किया कि काँग्रेस तथा मुस्लिम लीग के बीच भारत के भावी शासन प्रबन्ध की रूपरेखा के संबन्ध में कोई समझौता हो जाय। इस उद्देश्य से उसने मुस्लिम लीग की भारत विभाजन संबन्धी माँग पर निष्पक्ष रूप से विचार किया।

'मंत्री प्रतिनिधि मंडल' ने पाया कि यदि मुस्लिम लीग की माँग के अनुसार भारत में पाकिस्तान राज्य की स्थापना की जाय, तो उसके दो भाग होंगे—एक उत्तर-पश्चिम में, जिसमें पञ्जाब, सिंध, सीमाप्रांत तथा बिलोचिस्तान

होंगे, और दूसरा उत्तर-पूर्व में जिसमें बंगाल और आसाम रहेंगे। इस प्रबन्ध के आधीन पाकिस्तान के उत्तरी भाग में ६२ प्रविशत मुसलमान और ३८ प्रतिशत हिंदू रहेंगे और पूर्वी भाग में ५१·७ प्रतिशत मुसलमान और ४८·३ प्रतिशत हिंदू रहेंगे। शेष भागों में मुसलमानों की संख्या १४ प्रतिशत होगी। मन्त्री प्रतिनिधि मंडल ने कहा कि इस प्रकार का राज्य बनाने से भारत की साम्प्रदायिक समस्या का हल नहीं होता। न ही आर्थिक, शासनिक एवं सैनिक दृष्टि से ही पाकिस्तान राज्य की स्थापना व्यवहारिक होगी।

इसलिये उसने मुसलिम लीग की माँग को ठुकरा दिया और भारतीय समस्या का निवारण करने के लिये अपनी ओर से निम्न सुझाव राजनैतिक दलों के सम्मुख रक्खे :—

(१) भारत में एक अखिल भारतीय संयुक्त-राष्ट्र संघ की स्थापना हो, जिसमें ब्रिटिश भारत तथा देशी राज्य दोनों सम्मिलित हों और उसके आधीन ये विषय रक्खे जायँ : विदेशी मामले, रक्षा और यातायात। इस भारतीय संयुक्त राष्ट्र को अपने विषयों के व्यय के लिये आवश्यक धन उगाहने का भी अधिकार हो।

(२) भारतीय संयुक्त राष्ट्र में एक राज्य परिषद् तथा एक विधान सभा हो जिसमें ब्रिटिश भारत तथा देशी राज्यों के प्रतिनिधि रहें। विधान सभा में कोई महत्त्वपूर्ण साम्प्रदायिक मामला प्रस्तुत होने पर उसके निर्णय के लिये दोनों प्रमुख वर्गों के जो प्रतिनिधि उपस्थित हों उनका पृथक् पृथक् तथा समस्त उपस्थित सदस्यों का बहुमत आवश्यक हो।

(३) केन्द्रीय सङ्गठन के लिये निर्धारित विषयों को छोड़ कर अन्य समस्त विषय तथा समस्त अवशिष्ट अधिकार प्रान्तों को प्राप्त हों।

(४) देशी राज्य उन सब विषयों और अधिकारों को अपने आधीन रखें जिन्हें वे केन्द्र को सुपुर्द नहीं कर दें।

(५) प्रान्तो को अपने पृथक समूह बनाने का अधिकार हो जिनकी अलग राज्य परिषद् तथा धारा सभा हों। प्रत्येक प्रान्त समूह यह तय करें कि कि कौन कौन से विषय समान रूप से सामूहिक शासन में रहें।

(६) भारतीय राष्ट्र तथा प्रान्त समूहों के विधानों में इस प्रकार की

धारा हो जिससे द्वारा कोई भी प्रान्त अपनी धारा सभा के बहुमत से १० वर्ष बाद और फिर प्रति दस वर्ष बाद विधान की शर्तों पर पु[illegible] करने का प्रस्ताव प्रस्तुत कर सके।

उपरोक्त आधार पर भारत का संविधान बनाने के लिए मंत्री प्रति-मंडल ने यह सुझाव रक्खा कि एक संविधान सभा का निर्माण किया ज[illegible] इस 'सभा' में १० लाख व्यक्तियों के पीछे, प्रांतीय धारा सभाओं को निर्वा[illegible] क्षेत्र मान कर सांप्रदायिक आधार पर, सदस्य चुने जायँ। भिन्न-भिन्न प्रांत[illegible] संविधान सभा में चुने जाने वाले सदस्यों की संख्या इस प्रकार हो :—

क—विभाग

प्रांत	जनरल	मुस्लिम	योग
मद्रास	४५	२	४१
बंबई	१९	४	२१
संयुक्त प्रांत	४७	८	५५
बिहार	३१	५	३६
मध्यप्रांत	१६	[illegible]	१७
उड़ीसा	९	०	९
	१६७	२०	१८७

ख—विभाग

प्रांत	जनरल	मुस्लिम	सिक्ख	योग
पंजाब	८	१६	४	२८
उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रांत	०	३	०	३
सिंध	१	३	०	४
योग	९	२२	४	३५

ग—विभाग

प्रान्त	जनरल	मुस्लिम	योग
बंगाल	२७	३३	६०
आसाम	७	७	१०
योग	३४	३६	७०

ब्रिटिश भारत का योग २९२
देशी रियासतों की अधिक से अधिक संख्या ९ ९३

कुल योग ३८५

इस संविधान सभा को, भारत का नया संविधान बनाने का पूरा अधिकार । उस पर केवल इतनी ही रोक लगाई जाय कि वह मंत्री प्रतिनिधि मंडल योजना के आधीन रहकर कार्य करे।

प्रतिनिधि मंडल ने यह भी सुझाव रक्खा कि अन्तरिम काल में, जब क भारत का नया संविधान तैयार हो, तब तक सरकार का काम चलाने के ाए एक राष्ट्रीय सरकार की स्थापना की जाय जिसमें काँग्रेस तथा मुस्लिम ीग—दोनों दल—मिलकर कार्य करें।

राष्ट्र मंडल की सदस्यता के सबंध में मंत्री मंडल ने निश्चय किया कि स संबंध में भारत को पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त होगी। संविधान सभा चाहे तो ह निश्चय कर सकेगी कि भारत राष्ट्र मंडल से अलग रह कर एक स्वतंत्र ाष्ट्र के रूप में कार्य करेगा।

४. कैबिनट-मिशन के सुझावों का संक्षिप्त विवरण

ऊपर कैबिनेट-मिशन के सुझावों का जो विवरण दिया गया है संक्षेप में हम उसे दो भागों में विभक्त कर सकते हैं:—(१) दीर्घकालीन योजना और (२) अल्पकालीन योजना।

दीर्घकालीन योजना के अन्तर्गत भारत में एक ऐसे संघ की स्थापना करने का प्रस्ताव रक्खा गया जिसमें केवल तीन विषय अर्थात् रक्षा, विदेशों से सम्बंध तथा आने जाने के साधन, केन्द्रीय सरकार को सौंपे जायँ और बाकी सभी

विषय प्रान्तों के आधीन रहें। प्रान्तों को इस बात की भी स्वतन्त्रता दी गई कि यदि वे चाहें तो आपस में मिलकर अपने अलग-अलग विभाग बना लें जैसे एक विभाग सिंध, पञ्जाब, सीमान्त और बिलोचिस्तान का, दूसरा विभाग बंगाल तथा आसाम का और तीसरा विभाग दूसरे प्रान्तों का। अल्पकालीन योजना के अन्तर्गत कैबिनेट मिशन ने उस समय तक के लिए जब तक भारत का नया विधान बने, एक अंतरिम सरकार बनाने की योजना रक्खी।

योजना के गुण तथा दोष

कैबिनेट-मिशन योजना को ध्यान से पढ़ने पर मालूम पड़ता है कि इस योजना में कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग की परस्पर विरोधी माँगों के बीच समझौता कराने का प्रयत्न किया गया था। इसलिये इस योजना में वह सभी दोष तथा गुण विद्यमान थे जो इस प्रकार के समझौते में हुआ करते हैं।

गुण—(१) योजना का सबसे बड़ा गुण यह था कि इसमें पाकिस्तान की माँग को एकदम अव्यवहारिक तथा अस्वीकृत घोषित कर दिया गया था।

(२) दूसरे इस योजना के आधीन अल्पसंख्यक जातियों को अधिक प्रतिनिधित्व देने की बात नहीं मानी गई थी। इस प्रकार सब जातियों को बराबर अधिकार दिया गया था।

(३) योजना में प्रान्तों तथा रियासतों को मिला कर एक संघ बनाने का निश्चय भी प्रशंसनीय था।

(४) एक और विशेषता योजना यह थी कि संविधान सभा में रियासतों के प्रतिनिधियों का राजाओं द्वारा चुना जाना आवश्यक नहीं ठहराया गया। इसमें कहा गया था कि प्रान्तों तथा रियासतों के प्रतिनिधियों की एक कमेटी आपस में मिल कर इसका निश्चय करेगी।

(५) अन्त में अंग्रेजों को संविधान सभा में किसी प्रकार का प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया।

दोष—योजना में उपरोक्त गुणों के होने पर भी अनेक दोष विद्यमान थे। इनका संक्षिप्त वर्णन हम नीचे देते हैं:—

(१) सर्व प्रथम, सिखों के साथ योजना में घोर अन्याय किया गया था। उनके अधिकारों की रक्षा के लिये किसी प्रकार का प्रबन्ध नहीं किया गया।

(२) विभागों के बनाने की बात और फिर विभागों द्वारा उनके अंतर्गत प्रान्तों के विधान का निश्चय इस योजना की सबसे बड़ी खराबी थी। प्रान्तों को अपने विधान स्वयं बनाने की आज्ञा न देना प्रांतीय स्वशासन के सिद्धान्त के विरुद्ध था।

(३) योजना के आधीन केन्द्रीय सत्ता को बहुत ही शक्तिहीन बना दिया गया था और उसे तीन विषयों को छोड़ कर और किसी विषय पर अधिकार प्रदान नहीं किया गया था।

(४) अन्त में योजना में कहा गया था कि ब्रिटिश सरकार केवल उस दशा में विधान सभा द्वारा प्रस्तावित विधान को स्वीकार करेगी जब विधान सभा में सारे दल भाग लें। इस बात से मुस्लिम लीग को अवसर मिला कि वह विधान सभा के कार्य में भाग न ले और अपनी पाकिस्तान की माँग पर अड़ी रहे।

३५. मिशन का १६ जून का बयान

मिशन ने अपनी योजना के तीसरे भाग में कहा था कि वह भारत में वायसराय की कार्यकारिणी के स्थान पर एक अन्तरिम सरकार की स्थापना करना पसन्द करेगी। इस घोषणा को कार्यान्वित करने के लिये मिशन के सदस्यों ने १६ जून १९४६ को एक दूसरी घोषणा की जिसके द्वारा उन्होंने कांग्रेस के ६, मुस्लिम लीग के ५ तथा अल्पसंख्यक जातियों के ३ सदस्यों को अन्तरिम सरकार में सम्मिलित होने का न्यौता दिया। मिशन ने कहा कि केवल उन्हीं दलों को अन्तरिम सरकार में सम्मिलित होने का अवसर दिया जायगा जो २६ जून से पहिले मिशन की योजना के दोनों दीर्घकालीन तथा अल्पकालीन भागों को स्वीकार कर लेंगे। इस घोषणा के पश्चात् कांग्रेस तथा 'लीग' दोनों ही दलों ने अपनी-अपनी सभाएँ की। लीग ने योजना मान ली। कांग्रेस ने योजना के दीर्घकालीन भाग को तो स्वीकार कर लिया परन्तु उसने अल्पकालीन योजना को मानने से इंकार कर दिया। कारण, वह चाहती थी कि राष्ट्रीय मुसलमानों को भी सरकार में कुछ प्रतिनिधित्व मिल सके और मुस्लिम लीग इस बात के लिये राजी न होती थी। जब कैबिनेट मिशन को यह ज्ञात हुआ कि कांग्रेस और लीग दोनों ही मिशन

की दीर्घकालीन योजना को स्वीकार करते हैं परन्तु, अल्पकालीन योजना की स्वीकृति के विषय में उनमें मतभेद है तो उसने केवल मुस्लिम लीग के सहयोग से अन्तरिम सरकार बनाने से इंकार कर दिया।

मि० जिन्ना कैबिनेट मिशन के इस रवैये से आगबबूला हो गये। उन्होंने तो कैबिनेट मिशन की योजना को केवल इसलिये स्वीकार किया था कि उन्हें अन्तरिम सरकार बनाने का अवसर मिल सके। परन्तु जब, उनकी यह आशा पूरी न हुई तो उन्होंने कैबिनेट मिशन के सदस्यों को बुरा भला कहना आरंभ किया और २९ जुलाई सन् १९४६ को एक सभा बुलाकर मिशन की योजना को पूर्ण रूप से अस्वीकृत ठहरा दिया। लीग के इसी अधिवेशन में मि० जिन्ना ने सत्याग्रह (Direct action) की बात भी कही।

३६. संविधान सभा के लिये चुनाव

इस बीच १६ जून के बयान के पश्चात् वायसराय ने सब प्रान्तों की सरकारों को आदेश दिया कि वह संविधान सभा के लिये चुनाव करें। यह चुनाव जुलाई सन् १९४६ तक समाप्त हो गये। इन चुनावों में कुल ३८९ सीटों में से, काँग्रेस को २०५, तथा मुस्लिम लीग को ७३ सीटें प्राप्त हुईं, १८ सीटें स्वतन्त्र उम्मीदवारों को मिलीं जिनमें ११ हिंदू, ३ मुसलमान तथा ४ सिख थे। ९३ सीटों के लिये जो रियासतों के लिये सुरक्षित रक्खी गई थीं चुनाव नहीं किये गये। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वास्तव में २९६ सीटों में से काँग्रेस को २०५ सीटें प्राप्त हुईं।

३७. अन्तरिम सरकार की स्थापना

चुनावों के पश्चात् ब्रिटिश सरकार को यह विश्वास हो गया कि काँग्रेस ही देश की सबसे शक्तिशाली राजनीतिक संस्था है। इसलिये अगस्त सन् १९४६ में लार्ड वेवल ने काँग्रेस के प्रधान पं० नेहरू से प्रार्थना की कि वह अन्तरिम सरकार बनाने में सहायता करें। २ सितम्बर सन् १९४६ को पं० नेहरू ने यह सरकार बना ली। इस सरकार में उन्होंने कुल १२ सदस्य शामिल किये जिनमें से ५ हिन्दू, ३ मुसलमान, १ हरिजन, १ सिख, १ पारसी तथा १ ईसाई थे। अक्टूबर सन् १९४६ तक यह सरकार अत्यन्त सफलतापूर्वक कार्य करती रही। परन्तु, काँग्रेस द्वारा अन्तरिम सरकार बना लिये जाने से मि०

जिन्ना के तन बदन में आग लग गई। उन्होंने ब्रिटिश सरकार पर दबाव डाला कि मुस्लिम लीग के सदस्यों को भी अन्तरिम सरकार में शामिल किया जाय। इधर लार्ड वेवल भी यह अनुभव करने लगे थे कि कॉंग्रेस द्वारा सरकार बना लिए जाने से उनकी स्थिति एक वैधानिक अध्यक्ष की सी रह गई थी। उन्होंने इसीलिये इसी में अपना भला समझा कि मुस्लिम लीग के सदस्यों को अंतरिम सरकार में शामिल कर लिया जाय। अक्टूबर के अन्तिम सप्ताह में कॉंग्रेस के तीन सदस्य वायसराय की कार्यकारिणी से अलग हो गये। और उनके स्थान पर ५ मुस्लिम लीग के सदस्य सरकार में शामिल कर लिये गये। इन पाँच सदस्यों में मि० लियाकतअली खाँ, गजनफर अली खाँ, सरदार अब्दुल रब निश्तर, मि० चुन्द्रीगर तथा मि० मंडल थे।

अन्तरिम सरकार में सम्मिलित होने के पश्चात् मुस्लिम लीग के सदस्यों ने कॉंग्रेस के साथ सहयोग की नीति का अवलंबन नहीं किया वरन् वह अपने आप को एक अलग दल का सदस्य समझने लगे। वह सरकार के प्रत्येक काम मे अड़चन डालते रहे। उन्होंने विधान सभा के कार्य में भी भाग लेने से इन्कार कर दिया।

३८. ६ दिसम्बर की घोषणा

मुस्लिम लीग ने संविधान सभा की बैठकों में सम्मिलित होने से यह कह कर इन्कार किया कि कॉंग्रेस ने कैबिनेट मिशन योजना के विभाग सम्बन्धी भाग का ठीक अर्थ नहीं निकाला है। कॉंग्रेस का कहना था कि प्रान्तों को विभागों में सम्मिलित होने तथा अपना संविधान बनाने की स्वतन्त्रता होगी। मुस्लिम लीग का कहना था कि प्रान्त स्वतन्त्र नहीं होंगे। उनके संविधान का निश्चय सब विभाग के सदस्यों द्वारा किया जायगा। कॉंग्रेस और लीग के बीच यह मतभेद ब्रिटिश सरकार के फैसले के लिये पेश किया गया। ६ दिसंबर सन् १९४६ को ब्रिटिश सरकार ने अपना फैसला मुस्लिम लीग के हक में दे दिया। साथ ही कॉंग्रेस पर दबाव डालने के लिये ब्रिटिश सरकार ने कहा कि यदि कोई राजनीतिक दल विधान सभा में भाग नहीं लेगा तो जो विधान विधान-सभा बनायेगी उसको मानने के लिये सभा में भाग न लेने वाला दल बाध्य नहीं होगा।

ब्रिटिश सरकार की घोषणा से काँग्रेस को अत्यन्त क्षोभ हुआ। परन्तु फिर भी मुस्लिम लीग का सहयोग प्राप्त करने के लिये काँग्रेस ने ब्रिटिश सरकार के फैसले को स्वीकार कर लिया। पर जिन्ना साहब को खुश करना तो देवताओं के वश की भी बात न थी। काँग्रेस के इतना करने पर भी मुस्लिम-लीग ने विधान सभा में सम्मलित होना उचित न समझा। उसका कहना था कि मुस्लिम जाति किसी भी देश में एक विधान-सभा में भाग न लेगी। उसने यह माँग रक्खी कि पाकिस्तान तथा हिन्दुस्तान के भागों के लिये अलग-अलग दो विधान परिषदें बुलाई जायँ।

इधर केन्द्रीय शासन का कार्य मुस्लिम लीग की विरोधी नीति के कारण इतना कठिन होता जा रहा था कि पं० जवाहरलाल नेहरू ने लार्ड वेवल से प्रार्थना की कि वह या तो मुस्लिम लीग के सदस्यों को सरकार से निकाल दें अन्यथा उन्हें विधान सभा में भाग लेने तथा केन्द्रीय सरकार के काम में सहयोग देने को कहें। परन्तु लार्ड वेवल तो मुस्लिम लीग के सदस्यों को केन्द्रीय सरकार में इसीलिये लाये थे, जिसमें काँग्रेस के काम में बाधा पड़े और भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति का स्वप्न शीघ्र पूरा न हो सके। इसलिये उन्होंने पं० नेहरू की इस बात पर कोई ध्यान नहीं दिया।

३९. २० फरवरी का बयान

इधर २० फरवरी सन् १९४६ को ब्रिटेन के प्रधान-मंत्री ने एक और घोषणा की जिसका आशय यह था कि अंग्रेज सन् १९४८ तक भारत छोड़ देंगे। यह घोषणा इस आशय से की गई थी कि जिससे काँग्रेस और लीग के सदस्य स्थिति को समझें और आपस में समझौता करने के लिये कोई व्यवहारिक कदम उठाएँ। इस घोषणा के साथ ही लार्ड वेवल के स्थान पर लार्ड माउंटबैटन के वायसराय नियुक्त किये जाने का एलान किया गया।

४०. लार्ड माउंटबैटन का भारत में आगमन

लार्ड माउंटबैटन ने भारत आकर मुस्लिम लीग के नेताओं को सलाह दी कि वह कैबिनेट मिशन की १६ जून वाली घोषणा को स्वीकार कर लें। परन्तु इसका कोई परिणाम नहीं निकला। अन्त में लार्ड माउन्टबैटन ने बंगाल और पंजाब के विभाजन की बात कही। उन्होंने मुस्लिम लीग के

नेताओं से कहा कि यदि वह पाकिस्तान बनाना चाहतें हैं तो उन्हें उन इलाकों की जनता को जिनमें हिन्दू बहुमत में हैं हिन्दुस्तान के साथ रहने की स्वतंत्रता देनी होगी। मुस्लिम लीग को यह बात स्वीकार करनी पड़ी। अन्त में कॉंग्रेस ने भी यह समझ कर कि आए दिन के झगड़ों से देश का विभाजन अच्छा है, विभाजन की बात मान ली। दोनों राजनीतिक दलों की इस प्रकार सम्मति प्राप्त कर के, लार्ड माउंटबैटन अपनी भारत विभाजन योजना के प्रति ब्रिटिश सरकार की सहमति प्राप्त करने के लिये इंगलैंड गये।

४१. लार्ड माउन्टबैटन की भारत के विभाजन के लिए योजना

पहली जून को वह भारत वापिस आ गये और ३ जून सन् १९४७ को उन्होंने आल इण्डिया रेडियो के दिल्ली स्टेशन से वह ऐतिहासिक भाषण प्रसारित किया जिसमें उन्होंने भारत को दो स्वतंत्र राज्यों में बाँट देने की योजना जनता के सम्मुख रक्खी। इस योजना की मोटी-मोटी बातें यह थीः—

(१) बंगाल और पंजाब के प्रांतों को दो भागों में विभक्त कर दिया जाय—एक भाग जिसमें मुसल्मानों का बहुमत हो, दूसरा भाग जिसमें हिन्दू बहुमत में हों। १९४८ की जन गणना के आधार पर पंजाब में निम्न ज़िले मुसलिम बहुमत ज़िले घोषित किए गये :—

लाहौर डिवीज़न—गुजरांवाला, गुरदासपुर, लाहौर, शेखूपुरा और स्यालकोट।

रावलपिंडी डिवीज़न—अटक, गुजरात, जेहलम, मियाँवाली, रावलपिंडी, और शाहपुर।

मुल्तान डिवीज़न—डेरा गाज़ी खाँ, झंग, लायलपुर, मिंटगुमरी, मुल्तान, मुज़फ्फर गढ़।

इसी प्रकार बंगाल में निम्न ज़िले मुसलिम बहुमत ज़िले घोषित किए गये :—

चटगाँव डिवीज़न—चटगाँव, नोआखाली, तिपरा।

ढाका डिवीज़न—बाकरगंज, ढाका, फरीदपुर, मेमनसिंह।

प्रसीडैंसी डिवीज़न—जैसोर, मुर्शिदाबाद, नदिया।

राजशाही डिवीज़न—बोगरा, दीनजपुर, माल्दा, पबना, राजशाही और रंगपुर।

शेष ज़िले हिन्दू बहुमत जिले घोषित कर दिए गये।

योजना के आधीन इन ज़िलों के प्रांतीय धारा सभा के सदस्यों को इस बात का अधिकार दिया गया कि वह इस बात का फैसला करें कि प्रांत का विभाजन हो अथवा नहीं और यदि नहीं तो वह हिन्दुस्तान व पाकिस्तान में से कौन से देश की संविधान सभा में सम्मलित होना स्वीकार करेंगे।

(२) विभाजन की दशा में राज्यों की सीमा का अंतिम निश्चय करने के लिए एक सीमा निर्धारण कमीशन की नियुक्ति का फ़ैसला किया गया।

(३) सीमा प्रांत में चूँकि कांग्रेस का बहुमत था, इसलिए उस प्रांत की जनता को एक बार फिर यह अवसर प्रदान किया गया कि वह यह बतलाए कि वह हिंदुस्तान और पाकिस्तान—दोनों में से किस के साथ शामिल होना चाहती है।

(४) आसाम में सिलहट ज़िले के लोगों का मत जानने के लिए कि वह विभाजन की दशा में पूर्वी-बंगाल के साथ रहना पसन्द करेंगे या पश्चिमी बंगाल के साथ, जनमत लेने का निश्चय किया गया।

(५) जून १९४८ के स्थान पर फैसला किया गया कि भारत को सत्ता का तात्कालिक हस्तांतरण कर दिया जाय।

४२. माउन्टबैटन योजना की स्वीकृति

वायसराय के रेडियो भाषण के पश्चात् पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कांग्रेस की ओर से, मि० जिन्ना ने मुस्लिम लीग की ओर से तथा सरदार बलदेवसिंह ने सिखों की ओर से रेडियो पर भाषण दिये। इन तीनों नेताओं ने अपने भाषण में कहा कि उन्हें लार्ड माउन्टबैटन की योजना स्वीकार है। इसके पश्चात् कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग के सदस्यों ने अपने नेताओं के फैसलों का अनुमोदन किया। मुस्लिम लीग की आल इंडिया कौंसिल का एक अधिवेशन ९ जून सन् १९४७ को दिल्ली में हुआ, इस अधिवेशन में ८ के विरुद्ध ४०० रायों से लीग ने विभाजन का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। कांग्रेस ने भी १४ जून को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का अधिवेशन दिल्ली में ही बुलाया और उसमें २९ के विरुद्ध १५७ रायों के बहुमत से विभाजन के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। इस प्रकार दोनों राजनीतिक दलों की स्वीकृति प्राप्त करने के पश्चात्

लार्ड माउन्टबैटन ने विभाजन के कार्य को पूरे वेग के साथ सम्पन्न करने के लिये कदम उठाया। उन्होंने प्रान्तों की विधान सभाओं से कहा कि वह तुरंत भारत या पाकिस्तान के साथ मिलने का अपना निश्चय प्रगट करें। २० जून को बङ्गाल और २३ जून को पञ्जाब की विधान सभाओं ने बँटवारे का निश्चय कर लिया और मुसलिम बहुमत ज़िले पाकिस्तान में मिल गये। इसके कुछ दिन पश्चात् सिंध तथा बिलोचिस्तान के सूबों ने भी पाकिस्तान के साथ रहने की इच्छा प्रकट की। सीमा प्रान्त में भारत व पाकिस्तान के साथ मिलने के प्रश्न पर जनमत लिया गया। कांग्रेस तथा खुदाई खिदमतगार दलों ने इसका बहिष्कार किया, कारण वह चाहते थे कि सीमाप्रान्त में एक स्वतन्त्र पख़्तून सरकार बनाई जाय। मतगणना का परिणाम इस प्रकार रहा कि पाकिस्तान के हक़ में २,८६,२४४ मत आए, हिंदुस्तान के पक्ष में २,८७४ और २,८०,६८० मतदाता तटस्थ रहे। इसके कुछ दिन पश्चात् आसाम प्रान्त के सिलहट ज़िले में भी मत लिए गये। इस मत गणना में २,३९६१६ मतदाताओं ने पूर्वी बंगाल के साथ मिलने के पक्ष में राय दी और १,८४,०४१ मतदाताओं ने आसाम के साथ रहने की इच्छा प्रकट की। दोनों मतगणनाओं के परिणाम के फलस्वरूप सीमाप्रान्त और सिलहट पाकिस्तान में मिला दिये गये।

४३. १९४७ का भारतीय स्वाधीनता का कानून

४ जुलाई १९४७ को लार्ड माउन्टबैटन की भारत विभाजन की योजना को कार्यान्वित करने के लिये ब्रिटिश पार्लियामेंट में एक बिल पेश किया गया जिसे भारत की स्वाधीनता का बिल कहते हैं। इस बिल द्वारा भारत को दो स्वतंत्र उपनिवेशों में विभक्त कर दिया गया—एक भाग का नाम पाकिस्तान रक्खा गया और दूसरे का नाम इंडिया। वह बिल १५ जुलाई को पास हो गया।

इस कानून के पास होने के पश्चात् १५ अगस्त सन् १९४७ को भारत के दो टुकड़े कर दिये गये। सरकार की सारी संपत्ति रेल, कारखाने, डाकखाने, तार-घर, फौज का सामान, तथा, रिजर्व बैङ्क का समस्त धन दो हिस्सों में बाँट दिया गया और १५ अगस्त से ही दो स्वतन्त्र सरकारें, एक दिल्ली में और दूसरी कँराची में, कार्य करने लगीं। इतना शीघ्र सारा कार्य संपन्न करने का सारा श्रेय लार्ड माउन्टबैटन को ही प्राप्त है। विभाजन के पश्चात् भारत को

अच्छे दिन देखने नसीब नहीं हुये। कुछ ही दिनों पश्चात् भारत के लाखों नर और नारियों को साम्प्रदायिकता की भीषण ज्वाला का शिकार होना पड़ा। लाखों हिंदू और मुसलमानों को अपना घर और बार छोड़कर दूसरे स्थानों की शरण लेनी पड़ी और ३० जनवरी सन् १९४८ को भारत को वह दिन भी देखना पड़ा जब शान्ति के देवता, युग-पुरुष, राष्ट्र पिता महात्मा गांधी को अपनी ही कौम के एक कातिल ने गोली का शिकार बना डाला। फिर भी इन मुसीबतों का सामना करती हुई हमारी संविधान सभा अपना कार्य बराबर करती रही और अन्त में २६ नवम्बर सन् १९४९ को भारत का एक आदर्श विधान पास करके उसने अपना काम समाप्त कर दिया।

४४. हमारा नया विधान

हमारे इस नये विधान के संबंध में कुछ तथ्य और आँकड़े नीचे दिये जाते हैं:—

संविधान सभा के सदस्यों की संख्या—	३०८
सभा की पहली बैठक—	९ दिसम्बर, १९४६
विधान स्वीकृति की अन्तिम बैठक—	२६ नवम्बर १९४९
विधान बनाने में जो समय लगा—	२ वर्ष, ११ महीने, १८ दिन
कितने अधिवेशन हुये—	११
अधिवेशनों में दर्शकों की संख्या—	५३,०००
संविधान सभा पर कुल व्यय—	६३,९६,७२९ रुपये
वैधानिक सलाहकार द्वारा तैयार किये गये संविधान के मसविदे की विषय-सूची	२४३ धाराएँ और १३ परिशिष्ट
मसविदा समिति द्वारा विधान परिषद् के सम्मुख प्रस्तुत किये गये विधान के मसविदे की विषय-सूची	३१५ धाराएँ और ८ परिशिष्ट

विधान के मसविदे में कितने संशोधनों का नोटिस मिला—७,६३५ (लगभग)

वास्तविक संशोधनों की संख्या— २,४७३

अंतिम रूप में स्वीकृति विधान की आकृति— ३९५ धाराएँ और ८ परिशिष्ट

संसार के कुछ और बड़े देशों ने अपना विधान बनाने में कितना समय लगाया इसके तुलनात्मक आँकड़े नीचे दिये जाते हैं :—

अमरीका	४ महीने	७ धाराओं के लिये
कनाडा	२ वर्ष ५ महीने	१४७ धाराओं के लिये
आस्ट्रेलिया	६ वर्ष	१२८ धाराओं के लिये
दक्षिणी अफ्रीका	१ वर्ष	१५३ धाराओं के लिए
भारत	२ वर्ष ११ महीने और १८ दिन	३९५ धाराओं, ८ परिशिष्ट और २४७३ संशोधनों के लिये ।

योग्यता प्रश्न

(१) क्रिप्स योजना से लगाकर माउन्टबैटन योजना तक उन संवैधानिक सुधारों का वर्णन करो जो ब्रिटिश सरकार द्वारा भारतीय राजनैतिक गति अवरोध को दूर करने के लिये प्रस्तुत किये गये। माउन्टबैटन योजना क्यों स्वीकार की गयी ?

(२) मंत्री प्रतिनिधि मन्डल की सिफ़ारशें क्या थीं ? उसने पाकिस्तान की माँग को क्यों स्वीकार नहीं किया ? यह योजना क्यों ठुकरा दी गई ?

(३) सन् १९३५ के संविधान की क्या विशेषताएँ थीं ? हमारा वर्तमान संविधान उससे किस प्रकार भिन्न है ?

(४) निम्न पर संक्षेप में नोट लिखो :—
(१) रैगुलेटिंग ऐक्ट (२) पिट का इंडिया ऐक्ट (३) पूना पैक्ट (४) कैबिनेट सुझाव (५) वेवल सुझाव ।

अध्याय २

भारत के नये संविधान की कुछ विशेषताएँ

हमारे विधान निर्माताओं ने गण राज्य भारत के लिये जिस संविधान की रचना की है वह संसार में अनूठा है। यह एक ऐसा संविधान है जिस पर आने वाली पीढ़ियाँ गर्व कर सकेंगी, जिसे स्वयं इतिहास गर्व की दृष्टि से देखेगा। यह संविधान एक युग का पटाक्षेप तथा दूसरे युग का आरंभ है। भारत से असमानता, साम्प्रदायिकता, दमन, अत्याचार तथा अनेक सामाजिक कुरीतियों को दूर कर इस संविधान ने हमारे गौरव-सम्पन्न देश में स्वतन्त्रता, समानता, बन्धुत्व तथा न्याय के आदर्शों की नींव रक्खी है। संसार के दूसरे देश अमरीका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, इंगलैंड तथा आयरलैंड के संविधानों से उनके सर्वोच्च गुण ग्रहण कर, हमारे संविधान ने संसार के राजनीतिक इतिहास में एक नई परिपाटी को जन्म दिया है।

इंगलैंड के संविधान से मंत्रिमंडलात्मक शासन-प्रणाली को अपना कर, अमरीका के विधान से नागरिकों के मौलिक अधिकार, उच्चतम् न्यायालय तथा उपराष्ट्र पति की पद्धति ग्रहण कर, आयरलैंड के संविधान से नियामक सिद्धान्त तथा उच्च भवन का स्वरूप अपना कर, आस्ट्रेलिया के संविधान से समवर्ती विषयों को ग्रहित कर, तथा कनाडा के संविधान से केन्द्रीयकरण की भावना को अपना कर, हमारा नया संविधान संसार के सभी विधानों के गुणों की खान बन गया है। और इतना होने पर भी वह अपना एक अलग अस्तित्व रखता है। संघात्मक होते हुये भी यह विधान संघ शासनों की जटिलता तथा उनके अवगुणों से बचा हुआ है। भारत की विशेष परिस्थितियों का विचार करके यह विधान एक विशेष सांचे में ढाला गया है। यह हमारे ऋषियों की प्राचीन थाती "न्याय" के सिद्धान्त को पुनर्जीवित कर भारत में एक आदर्श

लोकतन्त्रात्मक समाज की स्थापना करता है। नीचे हम इस संविधान की कुछ मुख्य विशेषताओं का वर्णन करते हैं :—

१. जनता का अपना विधान

हम केवल एक ऐसे विधान को अच्छा कहते हैं जो प्रजातंत्रवाद के सिद्धान्त पर 'जनता का, जनता द्वारा, तथा जनता के हित के लिये, विधान हो। जो विधान केवल कुछ थोड़े से उच्च श्रेणी के धनिक लोगों द्वारा बनाया जाता है, उस विधान में जनता के हित का कुछ भी ध्यान नहीं रक्खा जाता और विधान निर्माता इस बात का ही प्रयत्न करते हैं कि राज्य की अंतिम शक्ति उनके ही हाथों में केन्द्रित रहे, और देश की गरीब शोषित, तथा अधिकारहीन जनता को ऊपर उठने का अवसर नहीं मिले। यह सच है कि हमारा नया विधान किसी प्रत्यक्ष चुनाव द्वारा वयस्क मताधिकार के आधार पर चुने हुये प्रतिनिधियों द्वारा नहीं बनाया गया है। परन्तु जिस परिस्थिति में हमारे देश की संविधान सभा का निर्माण हुआ, उस समय संविधान सभा के प्रतिनिधियों की प्रांतीय विधान सभाओं द्वारा चुने जाने के अतिरिक्त दूसरा उपाय ही नहीं था। प्रांतीय चुनाव कुछ ही समय पहिले हो चुके थे और इनमें केवल उन्हीं लोगों का बहुमत था जिन्होंने वर्षों की तपस्या तथा कठिन जन सेवा के पश्चात् जनता के हृदय में एक अनोखा स्थान प्राप्त कर लिया था। यदि संविधान सभा का चुनाव वयस्क मताधिकार के आधार पर भी होता तो भी उसमें वही प्रतिनिधि चुने जाते जो प्रान्तीय धारा सभाओं द्वारा चुने गये।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारी संविधान सभा का सङ्गठन जन सत्तात्मक था। संविधान में यह बात स्पष्ट रूप से कही गई है कि भारतीय संघ तथा उसकी सारी इकाइयों में अन्तिम सत्ता जनता के हाथ में रहेगी। भारतीय जनता को इस बात का पूर्ण अधिकार होगा कि वह जब चाहे अपने संविधान को बदल सके। इस प्रकार हमारा नया संविधान पूर्णरूप से जनतंत्रीय है और उसकी सारी शक्ति का श्रोत केवल जनता है। इसी उद्देश्य को ध्यान में रख कर संविधान की प्रस्तावना में कहा गया है कि, "हम भारत के लोग भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने

तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त करने के लिये तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता, सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिये दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख २६ नवम्बर, १६४६ ई० मिती मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी, संवत् दो हजार छै विक्रमी, को एतद् द्वारा इस संविधान को अङ्गीकृत, अधिनियमित, और आत्मार्पित करते हैं।"

२. राष्ट्रीय भावना का पोषक—एक राष्ट्र, एक नागरिकता, एक संविधान

हमारे संविधान की दूसरी सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि भारत के इतिहास में यह पहला अवसर है जब देश की ३२ करोड़ जनता तथा उसके १,२००,००० वर्ग मील के विस्तृत क्षेत्र के लिये एक ऐसे शासन की नींव रक्खी गई है जिसके अन्तर्गत भारत का प्रत्येक प्रांत तथा रियासत एक ही प्रकार के प्रजातंत्रीय शासन का अङ्ग होगी, सब का एक ही प्रकार का संविधान होगा, सब नागरिकों को एक ही प्रकार के सामाजिक तथा राजनीतिक अधिकार प्राप्त होंगे तथा सब स्थानों पर एक ही प्रकार की सरकारी व्यवस्था होगी। हर्षवर्धन, अशोक, गुप्त वंश तथा अकबर के काल में पहिले भी भारत के साम्राज्य का विस्तार चाहे इतना बड़ा रहा हो परन्तु इन राज्यों में विभिन्न प्रांत और रियासतें अपनी किसी भी प्रकार की शासन व्यवस्था रखने के लिये स्वतंत्र थीं और केन्द्रीय सत्ता का इस विषय में उन पर किसी प्रकार का नियंत्रण नहीं था। विभिन्न प्रांतों में राजाओं के अच्छे या बुरे होने पर जनता की भलाई तथा उनके अधिकार अवलंबित थे। परन्तु आज प्रथम बार भारत में एक ऐसे शासन की नींव रक्खी गई है जिसके अंतर्गत काश्मीर से लेकर कन्याकुमारी और आसाम से लेकर द्वारिका तक प्रत्येक नागरिक को एक ही प्रकार के अधिकार प्राप्त होंगे और वह केवल एक ही अविछिन्न तथा सुसङ्गठित भारत का घटक होगा।

३. देश की अखंड एकता का द्योतक

अगस्त सन् १६४७ में अंग्रेजी सत्ता समाप्त होने से पहिले हमारे देश

में ५६२ स्वतंत्र रियासतें थीं। उनके राजा मनमाने तरीके से अपनी प्रजा पर शासन करते थे। स्वतंत्र रूप से विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करके, वह जनता का निर्दयतापूर्वक शोषण करते थे। उनके राज्य में जनता को किसी भी प्रकार के नागरिक या राजनीतिक अधिकार प्राप्त नहीं थे। हमारे नये संविधान में भारत की इन ५६२ स्वतंत्र रियासतों को या तो प्रांतों में विलीन कर दिया गया है, या उनके संघ बना दिये गये हैं या उन्हें केन्द्रीय सरकार के अन्तर्गत चीफ कमिश्नर के सूबों में बाँट दिया गया है। इस प्रकार नये विधान के अंतर्गत सारे भारत का एकीकरण कर दिया गया है।

४. साम्प्रदायिकता का शत्रु

अंग्रेजों के काल में हिन्दू और मुसलमानों में लड़ाई कराना, उन्हें एक दूसरे से अलग रखना, तथा उनके लिये धारा सभा तथा सरकारी नौकरियों में अलग-अलग स्थान सुरक्षित रखना, सरकार की नीति का एक अङ्ग था। उस काल में हिन्दू और मुसलमानों के चुनाव के लिये अलग-अलग निर्वाचन-क्षेत्र बनाये जाते थे। हिन्दू हिन्दुओं को और मुसलमान मुसलमानों को राय देते थे। इस प्रथा के कारण हमारे देश में सदा हिन्दू और मुसलमानों का झगड़ा चला आता था। वह प्रत्येक प्रश्न पर साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से विचार करते थे। इसी विषैली भावना के कारण ही हमारे देश के दो टुकड़े हुये। नये संविधान के अन्तर्गत पृथक् निर्वाचन प्रणाली तथा सुरक्षित स्थानों की प्रथा का अन्त कर दिया गया है। आगे से हिन्दू और मुसलमान मिल कर एक दूसरे को राय देंगे। एक दूसरे के सहयोग, विश्वास तथा प्रेम के कारण ही वह धारा सभाओं में चुने जा सकेंगे। मुसलमानों के लिये कोई सीटें सुरक्षित नहीं होंगी। इस प्रकार भारत से साम्प्रदायिक भावना का कुछ काल के पश्चात् पूर्ण रूप से अन्त हो जायगा।

हरिजनों तथा कुछ पिछड़ी हुई जातियों को छोड़ कर जिसमें मजहबी, रामदासी, कबीर पंथी सिख शामिल होंगे, बाकी सभी जनता के लिये नये संविधान में एक से ही निर्वाचन क्षेत्र रक्खे गये हैं। किसी अल्प-संख्यक जाति के लिये धारा सभा या सरकारी नौकरियों में सुरक्षित स्थानों की व्यवस्था नहीं की गई है। हिन्दू और मुसलमान, सिख और ईसाई, ऐंग्लो इंडियन

और पारसी सब मिल कर एक दूसरे को राय देंगे और इस प्रकार भारत में एक सङ्गठित, दृढ़ तथा शक्तिशाली राष्ट्र का निर्माण हो सकेगा।

५. सामाजिक जन-तंत्र का हामी

नये विधान में छूत-छात तथा ऊँच-नीच के भेद-भाव को भी मिटा दिया गया है। विधान के अन्तर्गत अस्पृश्यता को एक भीषण अपराध घोषित कर दिया गया है। कोई भी मनुष्य छुआ-छूत के आधार पर किसी दूसरे व्यक्ति पर रोक न लगा सकेगा। वह उन्हें किसी दुकान, सार्वजनिक रेस्ट्राँ, होटल, सिनैमा, तालाब, कुआँ या सड़क का उपयोग करने से न रोक सकेगा। किसी भी प्रकार का स्वतंत्र व्यवसाय, व व्यापार करने में भी बाधा न डाल सकेगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि अस्पृश्यता के उस भूत का जिसे नष्ट करने के लिये हमारे देश के समाज-सुधारकों ने सदियों से प्रयत्न किये तथा जिसका अन्त करने के लिये, हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने कई बार अपने प्राणों की बाजी लगाई, नये संविधान के अन्तर्गत जड़ मूल से अन्त कर दिया गया है।

६. स्त्री और पुरुषों की समानता का पोषक

नये विधान के अन्तर्गत सदियों से शोषित तथा अधिकारहीन स्त्रियों को पुरुषों के समान ही अधिकार प्रदान किये गये हैं। उन्हें समान कार्य के लिये समान वेतन तथा चुनावों में पुरुषों के समान ही राय देने का अधिकार दिया गया है। विधान में कहा गया है कि सरकारी नौकरियों के क्षेत्र में भी पुरुषों और स्त्रियों में भेद-भाव नहीं बरता जायगा।

७. राजनीतिक लोकतंत्र का पालक

इसके अतिरिक्त विधान में प्रत्येक वयस्क स्त्री और पुरुष को राय देने का अधिकार दे दिया गया है। हिसाब लगाया गया है कि इस कानून के अन्तर्गत भारत की १८ करोड़ जनता सरकार के काम में भाग ले सकेगी। इतनी बड़ी जनसंख्या को भारत में राजनीतिक अधिकार पहिली ही बार प्राप्त होंगे। इस कानून के अन्तर्गत हमारी उन रियासतों की प्रजा को विशेष लाभ होगा जो अँग्रेजों के काल में एक दोहरी गुलामी की शिकार थीं—एक रियासती राजाओं की और दूसरी अंगरेजी सरकार की।

कुछ लोगों का विचार है कि वयस्क मताधिकार का अधिकार देकर सरकार ने अच्छा नहीं किया, क्योंकि भारत की अशिक्षित जनता अपने मत का उचित उपयोग न कर सकेगी। परन्तु जो लोग ऐसा कहते हैं उनका प्रजातंत्र शासन व्यवस्था में पूर्ण विश्वास नहीं है। जनता को राजनीतिक शिक्षा प्रदान करने के लिये मताधिकार सबसे महत्त्वपूर्ण साधन है। इसके अतिरिक्त पिछले चुनावों का अनुभव हमें बतलाता है कि भारतीय जनता में इतनी सामान्य बुद्धि अवश्य है कि वह अपना भला-बुरा अच्छी प्रकार समझ सके।

८. जनता के मौलिक अधिकारों का रक्षक

हमारे नये संविधान में प्रत्येक व्यक्ति के मौलिक अधिकारों की रक्षा की गई है। इन अधिकारों में वैयक्तिक स्वतन्त्रता का अधिकार, समानता का अधिकार, धार्मिक विश्वास का अधिकार, सांस्कृतिक और शिक्षा सम्बन्धी अधिकार, भाषण देने, सभा करने, संघ बनाने, तथा समाचार पत्र प्रकाशित करने के अधिकार सम्मिलित हैं। इन अधिकारों पर केवल वही रोक लगाई गई है जिनके द्वारा नागरिक अपने अधिकारों का दुरुपयोग न कर सकें। ऐसी रोक संसार के प्रत्येक देश में ही लगाई जाती हैं। कारण, अधिकारों का अर्थ होता है 'अपने व्यक्तित्व के विकास के लिये कुछ विशेष सुविधाओं की प्राप्ति'। भारत के नये संविधान में यह सभी सुविधाएँ प्रत्येक नागरिक को प्रदान की गई हैं। विधान में यह भी कहा गया है कि यदि राज्य का कोई विशेष कानून नागरिकों के मौलिक अधिकारों पर कुठाराघात करेगा, तो ऐसा कानून रद्द समझा जायगा। प्रत्येक नागरिक को इस बात का भी अधिकार प्रदान किया गया है कि यदि वह चाहे तो मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिये संघ की सर्वोच्च अदालत अर्थात् सुप्रीम कोर्ट में प्रार्थना पत्र दे सकता है।

९ अल्प-संख्यकों के अधिकार का समर्थक

नये विधान में केवल बहुसंख्यक जातियों के अधिकारों की ही रक्षा नहीं की गई, वरन् प्रत्येक अल्प-संख्यक जाति के धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, तथा राजनीतिक अधिकारों की रक्षा भी की गई है। संविधान में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि भारत के प्रत्येक नागरिक को धर्म, जाति, वर्ण, मत, लिंग के

विचार के बिना बराबर के अधिकार प्रदान किये जायेंगे। प्रत्येक नागरिक को अपनी इच्छानुसार किसी भी धर्म में विश्वास रखने की स्वतन्त्रता होगी। सरकार धार्मिक आधार पर किसी के साथ पक्षपात नहीं करेगी। अल्प-संख्यक जातियों के सांस्कृतिक तथा धार्मिक अधिकारों की रक्षा करना उसका परम धर्म होगा।

१०. धर्म निरपेक्ष (लौकिक) शासन का महापुजारी

इसी कारण से विधान में भारतीय सरकार को धर्मनिरपेक्ष, लौकिक या असाम्प्रदायिक राज्य (Secular state) कह कर पुकारा गया है। लौकिक सरकार का अर्थ यह नहीं होता कि सरकार धर्म विरोधी है या उसके सदस्य नास्तिक हैं या ईश्वर या किसी धर्म में विश्वास नहीं रखते। इसका अर्थ केवल इतना होता है कि सरकार स्वयं किसी नागरिक को किसी एक विशेष धर्म में विश्वास रखने के लिए बाध्य नहीं करती। वह किसी धर्म या सम्प्रदाय विशेष के मंदिरों, मस्जिदों, पूजा स्थानों, या शिक्षा सम्बन्धी संस्थाओं इत्यादि को विशेष सुविधाएँ प्रदान नहीं करती। वह इस सिद्धान्त में विश्वास रखती है कि धर्म प्रत्येक मनुष्य का वैयक्तिक प्रश्न है, सरकार का उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं। इसलिये सरकार प्रत्येक नागरिक को बराबर के ही धार्मिक अधिकार प्रदान करती है। सरकार किसी संघ, समुदाय या व्यक्ति विशेष के धार्मिक कार्य में हस्तक्षेप नहीं करती। धार्मिक संस्थाएँ अपने धर्म का स्वतंत्र रूप से प्रचार कर सकती हैं। परन्तु, धर्म के नाम पर वह जनता का शोषण, सामाजिक कुरीतियाँ, हिंसा, मारकाट, द्वेष तथा भेद-भाव का प्रचार नहीं कर सकतीं। प्रत्येक धर्म के लोगों को इस बात की पूर्ण स्वतंत्रता होती है कि वह अपने ईश्वर की जिस प्रकार भी चाहें आराधना करें, जिस प्रकार की चाहें शिक्षा प्राप्त करें, जिस प्रकार चाहें मंदिरों, मस्जिदों या गिरजाघरों में पूजा करें। सरकार इन कामों में हस्तक्षेप नहीं करती।

बहुत से लोगों को ऐसा भ्रम हो गया है कि लौकिक सरकार में केवल वही लोग सरकारी नौकरी प्राप्त कर सकेंगे जो या तो नास्तिक होंगे या किसी धर्म में विश्वास नहीं रक्खेंगे। स्कूल और कौलिजों में भी वह समझते

हैं कि धार्मिक शिक्षा बन्द कर दी जायगी, परन्तु इस प्रकार के विचार निर्मूल हैं। सरकार केवल इतना करेगी कि वह अपने स्कूल और कौलिजों में धार्मिक शिक्षा का प्रबन्ध नहीं करेगी, क्योंकि, उसकी दृष्टि में सब धर्म बराबर हैं। यदि वह हिन्दू धर्म की शिक्षा का प्रबन्ध करे तो भारत के ४ करोड़ मुसलमान कहेंगे कि हमारे धर्म की शिक्षा का प्रबन्ध क्यों नहीं किया गया ? ईसाई, सिख, जैन, पारसी, और शेष सब लोग भी इसी प्रकार की माँग रक्खेंगे। इसलिये सरकार ने यह निश्चय किया है कि वह अपनी ओर से संचालित संस्थाओं, स्कूल या कौलिजों में धार्मिक शिक्षा का प्रबन्ध नहीं करेगी। परन्तु, यदि स्वतंत्र नागरिक अपने स्कूल या कौलिज में धार्मिक शिक्षा का प्रबन्ध करना चाहें, तो उन्हें ऐसा करने की पूर्ण स्वतंत्रता होगी। हाँ, इतना अवश्य है कि ऐसे स्कूल और कौलिजों में किसी भिन्न धर्म में विश्वास रखने वाले विद्यार्थियों को धार्मिक शिक्षा या ईश्वर स्तुति में भाग लेने के लिये बाध्य नहीं किया जायगा। लौकिक राज्य की पहिचान केवल इतनी है कि इस प्रकार के राज्य में धर्म या विश्वास के आधार पर किसी एक और दूसरे नागरिक में भेद-भाव नहीं बरता जाता।

पाकिस्तान को हम लौकिक राज्य न कह कर धर्मतंत्र राज्य या इस्लामी राज्य कहते हैं। यह केवल इसलिये कि उस राज्य के अन्तर्गत हिन्दुओं के साथ भेद-भाव की नीति बरती जाती है। पाकिस्तान रेडियों पर प्रतिदिन क़ुरान की तलावत होती है, परन्तु हिन्दुओं के लिये वेदों या गीता का पाठ नहीं। मुसलमान जहाँ चाहें ज़मीन या ज़ायदाद खरीद सकते हैं, परन्तु हिन्दुओं को उनकी अपनी ज़मीन या ज़ायदाद से भी निकाल कर भगाया जा रहा है। सरकारी नौकरियों में भी हिन्दुओं के साथ भेद-भाव किया जाता है। इसलिये हम उस राज्य को धर्मतंत्र राज्य कहते हैं। ऐसा राज्य संसार के प्रगतिशील देशों में घृणा की दृष्टि से देखा जाता है और वह राष्ट्र कभी भी संसार के स्वतंत्र तथा उच्चतम राष्ट्रों की श्रेणी में सम्मान नहीं पाता। तंगदिली, संकुचित विचार, छोटी बातें, भेद-भाव, द्वेष की भावना और धार्मिक असहिष्णुता किसी राष्ट्र के नागरिकों को ऊपर उठने से रोकती है। संसार में केवल वही देश उन्नति करते हैं जहाँ की जनता का हृदय विशाल हो, उनमें

किसी भी प्रकार की क्षुद्र भावना न हो और प्रत्येक सार्वजनिक विषय पर उनमें राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण से विचार करने की क्षमता हो।

११. एक राष्ट्र-भाषा का जन्मदाता

भारतीय विधान की एक और बड़ी विशेषता यह है कि प्रथम बार भारत की ३२ करोड़ जनता के लिये एक भाषा तथा एक लिपि का सिद्धांत स्वीकार किया गया है। संसार के दूसरे देशों को देखने से पता चलता है कि आयरलैंड, कैनाडा तथा स्वीट्जरलैंड जैसे छोटे देशों में भी एक नहीं वरन् दो-दो और तीन-तीन भाषाएँ राज्य भाषा का कार्य करती हैं। हमारे देश में १४ प्रांतीय भाषायें हैं जो साहित्यिक दृष्टिकोण से पूर्णरूपेण समुन्नत हैं। इनमें दक्षिण भारत की भाषायें भी हैं जो उत्तर प्रांतों की भाषाओं से बिलकुल भिन्न हैं। ऐसी अवस्था में विधान सभा द्वारा सारे राष्ट्र के लिये एक ही भाषा की स्वीकृति, भारतीय राष्ट्रीयता के निर्माण में एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण कदम है। भारत की प्राचीन संस्कृति के इतिहास में यह पहला ही अवसर होगा जब १५ वर्ष के पश्चात्, हमारे देश की प्रत्येक प्रान्तीय तथा केन्द्रीय सरकार 'राष्ट्र भाषा हिन्दी में ही अपना कार्य करेगी।

१२. देश की नव-प्राप्त स्वतन्त्रता का प्रहरी

हमारे संविधान की एक और बड़ी विशेषता यह है कि उसका स्वरूप सङ्घात्मक होनेपर भी उसमें वह सारे गुण विद्यमान हैं जिनके द्वारा विशेष परिस्थितियों में केन्द्रीय सरकार उसी प्रकार कार्य कर सकेगी जैसा वह एकात्मक रूप रखने पर कर सकती थी। हमारा इतिहास हमें बतलाता है कि जब जब भारत में केन्द्रीय सत्ता ढीली पड़ी तभी तब भारत की स्वतन्त्रता को विदेशियों के आक्रमण का सामना करना पड़ा। हमारे विधान निर्माताओं ने इसीलिये हमारे नये विधान में सङ्घीय तथा एकात्मक शासन की उन सभी अच्छाइयों को ग्रहण कर लिया है जिनसे चाहे हमारा विधान राजनीतिक विद्वानों की दृष्टि में एक नये प्रकार का विधान कहलाये, परन्तु भारत की वर्तमान राजनीतिक परिस्थिति में वह सबसे अधिक उपयुक्त विधान है। आज हमारे देश की सबसे बड़ी आवश्यकता अपनी स्वतन्त्रता को दृढ़ बनाने की है। हमारे देश में कितनी

ही राष्ट्र विरोधी शक्तियाँ काम कर रही हैं। कभी संकुचित प्रान्तीयता की भावना अपना सिर उठाती है तो कभी देशी रियासतों के राजा अपनी खोई हुई सत्ता को दोबारा प्राप्त करने की सोचते हैं। ऐसी दशा में एक शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार ही हमारी नवप्राप्त स्वतंत्रता की रक्षा कर सकती है और नये विधान में इसका पूर्ण रूप से प्रबन्ध कर दिया गया है।

१३. स्वतन्त्र न्यायालय

भारतीय विधान की एक और विशेषता यह है कि इसके अन्तर्गत एक ऐसे स्वतंत्र न्यायालय के निर्माण का प्रबंध किया गया है जो केवल नागरिकों के अधिकारों की रक्षा न करेगा वरन् स्वयं विधान के संरक्षक का काम भी करेगा। प्रत्येक राजनीति का विद्यार्थी जानता है कि किसी देश में नागरिकों के अधिकारों का उस समय तक कोई मूल्य नहीं होता जब तक देश में एक स्वतंत्र न्यायालय की स्थापना न हो। भारत की सङ्घीय अदालत को इस बात का पूर्ण अधिकार होगा कि वह नागरिकों के अधिकारों की रक्षा के लिये हैबस कार्पस पेटिशन जारी कर सके तथा ऐसे -कानूनों को विधान विरोधी घोषित कर दे जो नागरिकों के मौलिक अधिकारों की अवहेलना करते हों। इसके अतिरिक्त विधान में प्रांतो के अन्तर्गत कार्यकारिणी और न्याय विभाग की स्वतंत्रता के लिये भी आयोजन किया गया है।

१४. नमनीय संविधान

अंत में भारतीय विधान अपरिवर्तनशील नहीं, वह समय की बदलती हुई परिस्थिति के अनुसार बदला जा सकता है। इस विधान में फैलाव, विकास तथा परिवर्त्तनशीलता के सभी गुण विद्यमान हैं। विधान की अधिकतर धाराएँ ऐसी हैं जिन्हें राष्ट्रपति, राज्य की सरकारें या केन्द्रीय संसद् बहुमत या दो-तिहाई बहुमत से बदल सकेंगी। इस प्रकार हम देखते हैं कि यदि हमारे भावी शासक, विधान की किन्हीं विशेष धाराओं से असन्तुष्ट हों तो वह उन्हें आसानी से बदल सकेंगे।

भारत के योग्य विधान निर्माताओं ने इस प्रकार हमारे देश में एक ऐसे विधान की नींव रक्खी है जिस पर संसार के राजनीतिक विशारद मुग्ध हो उन्हें

हैं और जिसकी सभी विद्वान व्यक्तियों ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। इस संविधान के अन्तर्गत कार्य करके हमारी आगे आने वाली सन्ततियाँ एक ऐसे राष्ट्र का निर्माण कर सकेंगी जो हर प्रकार से प्रगतिशील, प्रभावशाली तथा संसार के सर्वोत्तम राष्ट्रों में एक होगा।

योग्यता प्रश्न

(१) भारत के नये संविधान के मुख्य गुण क्या हैं ?

(यू० पी० १९५१)

(२) हमारा संविधान संसार के सब विधानों से उत्तम है। इस कथन की यथार्थता की परीक्षा कीजिए।

अध्याय ३

भारत राष्ट्र-मंडल के सदस्य के रूप में

भारत में एक सम्पूर्ण प्रभुत्व-प्राप्त लोकतन्त्रात्मिक गण राज्य की स्थापना २६ जनवरी, सन् १९५० को हुई। परन्तु जनता के बहुत से लोग पूछते हैं कि यह गणराज्य कैसा जिसमें भारत अब भी राष्ट्र-मंडल का सदस्य है और एक ऐसे राष्ट्र-मंडल का जिसका अध्यक्ष ब्रिटेन का सम्राट् है? कुछ दूसरे लोग कांग्रेस को उसकी रावी के तट पर लाहौर के अधिवेशन में की गई पूर्ण स्वतन्त्रता की प्रतिज्ञा की याद दिलाते हैं और पूछते हैं कि २० वर्ष तक लगातार इस प्रतिज्ञा के दुहराने पर भी भारत ने राष्ट्र-मंडल का सदस्य होना तथा एक स्वतन्त्र औपनिवेशिक स्थिति क्यों स्वीकार कर ली?

जो लोग इस प्रकार के प्रश्न करते हैं वह राष्ट्र-मंडल के इतिहास, व्यवस्था तथा उसके सदस्यों के अधिकारों के विषय में जानकारी नहीं रखते। वास्तव में राष्ट्र-मंडल किसी राज्य अथवा सरकार का नाम नहीं। वह तो कुछ ऐसे स्वतन्त्र देशों के समूह का नाम है, जो ऐतिहासिक, राजनैतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक बन्धनों के कारण अपने आपको एक दूसरे के बहुत निकट अनुभव करते हैं और कुछ समान उद्देश्यों की पूर्ति के लिए एक दूसरे के सहयोग तथा मित्रता के भाव से काम करते हैं। राष्ट्र मंडल के सदस्यों में कोई एक सदस्य दूसरे के आधीन रहकर काम नहीं करता। सब सदस्य बराबर का दर्जा रखते हैं। वह हर प्रकार से अपने आन्तरिक व बाह्य मामलों में स्वतन्त्र होते हैं, वह अपनी विदेशी नीति का स्वयं संचालन करते हैं, वह अपना विधान स्वयं बनाते हैं और उसे जब चाहे बदल सकते हैं।

एक समय था जब सन् १९२६ के वैस्ट मिन्स्टर स्टैच्यूट के पास होने से

पहिले राष्ट्रमंडल के सदस्य कुछ मामलों में इंगलैंड के आधीन रहकर काम करते थे। उनके देश में कार्यकारिणी के अध्यक्ष अर्थात् गवर्नर-जनरल की नियुक्ति ब्रिटेन के सम्राट् द्वारा अपनी स्वेच्छा से की जाती थी। उपनिवेशों का विधान भी इंगलैंड की पार्लियामेंट द्वारा ही बनाया जाता था। विदेशी नीति का संचालन भी 'ह्वाइट हाल' से ही होता था। सब उपनिवेशों की अन्तिम अपीलें इंगलैंड की प्रिवी कौंसिल में ही सुनी जाती थीं। और भी कितने ही आर्थिक व राजनीतिक विषयों में उपनिवेश इंगलैंड की सरकार के आधीन थे।

परन्तु राष्ट्र-मंडल का यह स्वरूप इतिहास की प्रगति के साथ बराबर बदलता रहा है। राष्ट्र-मंडल ऐसे सदस्यों की संस्था बनती गई है जो सब प्रकार से स्वतन्त्र हैं तथा जो केवल कुछ ऐतिहासिक बन्धनों के कारण एक दूसरे के प्रति आत्मीयता का अनुभव करते हैं।

सन् १९२६ का वैस्ट मिनस्टर स्टैच्यूट

सन् १९२६ तक राष्ट्र-मंडल के सदस्य बहुत कुछ स्वतंत्र हो चुके थे। इस स्वतन्त्रता को कानून का रूप देने के लिये उस वर्ष एक विशेष ऐक्ट पास किया गया जिसका नाम, 'वैस्ट मिनस्टर स्टैच्यूट' पड़ा। इस स्टैच्यूट में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि इंगलैंड और उससे सम्बन्धित दूसरे राष्ट्र-मंडल के सदस्यों की सरकारें बराबर स्थान रखती हैं। उनमें कोई एक दूसरे के आधीन नहीं। प्रत्येक देश की सरकार जिस प्रकार का चाहे, अपने देश के लिये कानून बना सकती है। वह दूसरे देशों से स्वतन्त्र व्यापारिक सन्धि कर सकती है। वह अपना विधान स्वयं बदल सकती है। वह ब्रिटिश सरकार द्वारा पास किये गये कानूनों को रद्द कर सकती है। वह इंगलैंड के विरुद्ध होने वाली लड़ाई में तटस्थ रह सकती है। वह अपने राजदूत दूसरे देशों में भेज सकती है। वह प्रिवी कौंसिल में होने वाली अपीलों को समाप्त कर सकती है। वह अपनी अलग जल तथा वायु सेना रख सकती है और यदि वह चाहे तो ब्रिटिश साम्राज्य से भी अलग हो सकती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि १९२६ के कानून के मातहत राष्ट्र-मंडल के सदस्यों को इंगलैंड की सरकार के समान ही सब मामलों में बराबर का रुत्बा दे दिया गया था। इंगलैंड तथा राष्ट्र मंडल के सदस्यों में केवल इतना सम्बन्ध था कि वह सब इंगलैंड के सम्राट् को

अपना सम्राट् मानते थे तथा उसके प्रति वफादारी का हलफ उठाते थे। सम्राट् का एक प्रतिनिधि गवर्नर-जनरल के रूप में उनके देश में रहता था। परन्तु उसकी नियुक्ति भी ब्रिटिश सम्राट् द्वारा नहीं वरन् स्वतन्त्र उपनिवेश के प्रधान मंत्री की सलाह से की जाती थी। ब्रिटिश सम्राट की आधीनता इस प्रकार केवल नाम मात्र की ही थी।

भारत और राष्ट्र-मंडल (India and the Commonwealth)

परन्तु भारतवर्ष ने ऐसे भी स्वतंत्र उपनिवेश का सदस्य होना स्वीकार नहीं किया। कारण, जैसा पहिले बतलाया जा चुका है, सन् १९३० के पश्चात् से हमारे देश की राष्ट्रीय कांग्रेस सदा से इस बात को दुहराती रही थी कि भारतवर्ष किसी भी दशा में अंग्रेज से पूर्ण स्वतंत्रता लिये समझौता नहीं करेगा। इसके अतिरिक्त दिसम्बर सन् १९४६ में संविधान सभा ने अपने उद्देश्यात्मक प्रस्ताव में कहा था कि भारत के अन्दर एक सम्पूर्ण प्रभुत्व-प्राप्त लोकतंत्रात्मक गण राज्य की स्थापना करना ही उसका ध्येय होगा। इसलिये पं० जवाहरलाल नेहरू ने अप्रैल सन् १९४९ के कामनवैल्थ अधिवेशन में भारत की ओर से यह माँग रक्खी कि उनका देश राष्ट्र-मंडल का सदस्य रहना केवल उस दशा में स्वीकार करेगा जब उसे अपना गणतंत्रीय स्वरूप (Republican form) कायम रखने का अधिकार मिले अर्थात् वह ब्रिटिश सम्राट् को अपना सम्राट नहीं माने और उसके प्रति वफादारी का हलफ न उठाये। कामनवैल्थ राष्ट्रों ने भारत की यह माँग मान ली। इस प्रकार हम देखते हैं कि राष्ट्र-मंडल का सदस्य रहने के लिये भारत ने अपनी प्रतिज्ञा को नहीं बदला, वरन् राष्ट्र-मंडल ने ही भारत को अपना सदस्य बनाये रखने के लिये अपना स्वरूप बदल डाला, और इस तरह कामनवैल्थ राष्ट्रों का एक और बंधन जो ब्रिटिश सम्राट् के प्रति वफादारी के रूप में अब तक कायम था, वह भी टूट गया। नये विधान के अन्तर्गत इसलिये भारतीय सरकार का अध्यक्ष ब्रिटिश सम्राट या उसके प्रतिनिधि गवर्नर-जनरल नहीं वरन् भारतीय जनता का अपना प्रतिनिधि "राष्ट्रपति" है।

इस प्रकार विदित है कि कांग्रेस ने राष्ट्र-मंडल का सदस्य रहना स्वीकार करके देश के साथ की गई किसी प्रतिज्ञा को नहीं तोड़ा। राष्ट्र-मंडल का

सदस्य रहकर भी भारत प्रत्येक आन्तरिक तथा बाह्य मामलों में पूर्ण रूप से स्वतन्त्र है, उसकी सरकार को पूर्ण सत्ता प्राप्त है। वह अपनी विदेशी नीति स्वयं निश्चित करता है। वह किसी भी प्रकार इंगलैंड की सरकार के आधीन नहीं। हमारी सरकार ने कम्युनिस्ट चीन को इंगलैंड की सरकार से पहले ही मान्यता देकर यह बात पूर्ण रूप से साबित कर दी कि भारत अपनी विदेशी नीति का स्वयं सञ्चालन करता है और वह ब्रिटेन या दूसरे स्वतन्त्र उपनिवेशों के साथ काम करने के लिए बाध्य नहीं।

जो लोग भारत के राष्ट्र-मंडल का सदस्य होने के नाते कांग्रेस के लिये कहते हैं कि उसने देश के साथ गद्दारी की या अपनी पिछली प्रतिज्ञाओं को तोड़ा, वह यह भूल जाते हैं कि हमारे देश को राष्ट्र-मंडल की सदस्यता से लाभ ही हुआ है, हानि नहीं। राष्ट्र-मंडल का सदस्य होना हमारे देश के लिये उस दशा में तो हानिकारक अवश्य था यदि उसके बदले हमें अपनी पूर्ण-स्वतन्त्रता के साथ समझौता करना पड़ता या किसी प्रकार से आन्तरिक अथवा बाह्य विषयों में हम इंगलैंड की सरकार की बात मानने के लिये बाध्य हो जाते। परन्तु आज स्थिति इसके बिल्कुल विपरीत है। राष्ट्र-मंडल एक ऐसे देशों का समूह है जो उसी सिद्धान्त में विश्वास रखते हैं जिसमें भारत। वह सब स्वतन्त्रता, समानता, बन्धुत्व, न्याय तथा प्रजातन्त्रवाद के उपासक हैं। वह सब संसार में शान्ति बनाये रखना चाहते हैं। आज इंगलैंड अपना साम्राज्यवादी स्वरूप छोड़ चुका है। धीरे-धीरे उसके अधीनस्थ सभी देश स्वतन्त्र होते जा रहे हैं। आज राष्ट्र-मंडल के सदस्यों में ८० प्रतिशत जनसंख्या उन लोगों की है जो एशिया के रहने वाले हैं। भारत, पाकिस्तान तथा लंका के राष्ट्र-मंडल का सदस्य हो जाने से उसमें गोरी जाति के लोगों की प्रधानता कम हो गई है। राष्ट्र-मंडल का स्वरूप अब बिलकुल बदल गया है।

आज की दुनिया में संसार का कोई भी देश दूसरे देशों से अलग रह कर उन्नति नहीं कर सकता। राष्ट्र-मंडल के सभी देश एक ही भावना से प्रेरित हैं। इसलिये एक दूसरे के साथ मिल कर काम करने से उन सब की शक्ति बढ़ती है। वह संसार में एक ऐसी शक्ति का निर्माण कर सकते हैं जो आजकल के भयभीत तथा युद्ध की भावना से ओत-प्रोत जगत में शान्ति स्थापित करने

के कार्य में सहायक हों। आज रूस और अमरीका की बढ़ती हुई शक्ति संसार की शान्ति को खतरे में डाल सकती है। यदि राष्ट्र-मंडल के सदस्य आपस में मिल कर एक ऐसी तीसरी शक्ति का निर्माण कर सकें जो इन दोनों शक्तियों से बड़ी हो तथा जो इन परस्पर विरोधी शक्तियों का मुकाबिला कर सके तो संसार में शान्ति और सुख का वातावरण निर्माण नहीं हो सकता है।

राष्ट्र-मंडल के सदस्य एक उच्च नैतिक भावना से प्रेरित हैं। वह पूँजीवाद तथा साम्यवाद के बीच एक बड़ी खाई को पाटने का काम कर सकते हैं। वह संसार में एक ऐसी शक्ति को जन्म दे सकते हैं जो एक प्रलयंकारी तीसरे महायुद्ध के भय को दूर कर सके। हमारे देश को एक ऐसे राष्ट्र-संघ का सदस्य होने से लाभ ही है।

आर्थिक क्षेत्र में भी हम राष्ट्र-मंडल के देशों के सहयोग से अधिक उन्नति कर सकते हैं। हमारे देश का ७५ प्रतिशत व्यापार राष्ट्र-मंडल के देशों के साथ ही होता है। ऐसे देशों के साथ व्यापारिक सन्धि करके तथा आयात-निर्यात-कर संबंधी सुविधाएँ देकर हम अपने व्यापार को कई गुना बढ़ा सकते हैं। हमारे देश में इङ्गलैण्ड की जनता का कई सौ करोड़ रुपया उद्योग धंधों में लगा हुआ है। अपनी वर्त्तमान आर्थिक दशा को सुधारने के लिये हम राष्ट्र-मंडल के सदस्यों से और भी कई प्रकार की पूँजी तथा टैकनिकल सहायता संबंधी सहूलियतें प्राप्त कर सकते हैं।

सैनिक दृष्टि से, राष्ट्र-मंडल की सदस्यता के कारण हम विदेशी आक्रमणों का अपनी जल-थल तथा हवाई सेना पर बहुत अधिक व्यय किये बिना आसानी से मुकाबला कर सकते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि राजनैतिक आर्थिक तथा सैनिक दृष्टि से, राष्ट्र-मंडल का सदस्य रहना स्वीकार करके भारत सरकार ने बुद्धिमत्ता का ही कार्य किया है, मूर्खता का नहीं।

योग्यता प्रश्न

(१) राष्ट्र-मंडल क्या है? भारत ने राष्ट्र-मण्डल का सदस्य रहना क्यों स्वीकार किया?

(२) भारत एक सम्पूर्ण अधिकार-प्राप्त प्रजातंत्र राज्य है। राष्ट्र-मण्डल की सदस्यता के साथ यह कथन कहाँ तक सच साबित होता है?

अध्याय ४

केन्द्रीय संघ शासन; नागरिकता तथा मौलिक अधिकार

पृष्ठ ६१ पर दी गई तालिका में हमारे नये विधान के अन्तर्गत जो राज्य भारतीय सङ्घ में सम्मिलित किये गये हैं उनका विवरण दिया गया है। इन राज्यों की व्याख्या संविधान की प्रथम अनुसूची के भाग (क) (ख) (ग) और (घ) में दी गई है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नये विधान के अंतर्गत भारत अंडमान-निकोबार को छोड़ कर, २७ विभागों में विभक्त किया गया है। इन विभागों में भारत की वह ५६२ रियासतें भी शामिल हैं जो अंग्रेजी राज्य के काल में स्वतंत्र थीं तथा जिनका शासन प्रबन्ध उनके राजाओं की स्वेच्छा से किया जाता था। नये संविधान में इन सभी रियासतों को शासन की दृष्टि से प्रांतों के स्तर पर ला खड़ा किया गया है। भारतीय सङ्घ के विभाग अब एक ही प्रकार के संविधान के अन्तर्गत शासित होंगे, उन सब में शासन का स्वरूप समान होगा, सब राज्यों के नागरिकों को एक ही प्रकार के अधिकार प्राप्त होंगे, उन सब में एक ही प्रकार की विधान सभाएँ तथा मंत्रिमण्डल होंगे, सब में उत्तरदायी शासन होगा तथा सब राज्यों में अंतिम शक्ति जनता के हाथ में निहित रहेगी।

इतने थोड़े समय में देश का एकीकरण करना तथा उन राज्यों के सङ्घ बनाना अथवा उन्हें प्रान्तों में विलीन करना जिनको हमारे विदेशी शासक भारत से विदा लेते समय पूर्ण रूप से स्वतंत्र कर गये थे, हमारे नये विधान की राष्ट्र को सब से बड़ी देन है।

भारतीय संघ

(क) राज्य (जो संविधान पास होने से पहिले गवर्नरों के प्रान्त कहलाते थे)	(ख) राज्य (जो संविधान पास होने से पहिले रियासतें कहलाती थीं)	(ग) राज्य (जो संविधान पास होने से पहिले चीफ कमिश्नर के प्रान्त तथा रियासतें कहलाती थीं)	(घ राज्य (जो संविधान पास होने से पहिले कालेपानी के नाम से पुकारा जाता था।)
१. आसाम	१. जम्मू और काश्मीर	१. अजमेर	१. अंडमान और निकोबार द्वीप
२. उड़ीसा	२. ट्रावनकोर-कोचीन	२. कच्छ	
३. पंजाब	३. पटियाला तथा पूर्वी पञ्जाब सङ्घ	३. कूच बिहार (यह राज्य अब पश्चिमी बंगाल में मिला दिया गया है)	
४. पश्चिमी बंगाल	४. मध्य भारत	४. कुर्ग	
५. बिहार	५. मैसूर	५. त्रिपुरा	
६. मद्रास	६. राजस्थान	६. दिल्ली	
७. मध्य प्रदेश	७. सौराष्ट्र	७. बिलासपुर	
८. बम्बई	८. हैदराबाद	८. भोपाल	
९. उत्तर प्रदेश	९. विंध्य प्रदेश (संविधान पास होने के पश्चात् यह राज्य केन्द्रीय सरकार के आधीन ले लिया गया है।)	९. मनीपुर	
		१०. हिमाचल प्रदेश	

नये राज्यों का निर्माण अथवा उनकी सीमाओं में अदला-बदली—यह सच है कि आज भी हमारे राष्ट्र का विभाजन किसी वैज्ञानिक दृष्टि से नहीं किया गया है, भाषा के आधार पर प्रान्तों का पुनर्निर्माण नहीं हुआ है, राज्यों की संख्या भी अधिक है परन्तु संविधान में इस बात का पूरा प्रबन्ध कर दिया गया है कि भविष्य में जनता की इच्छानुसार प्रान्तों की सीमाओं में अदला-बदली हो सके, नये राज्य भारतीय संघ के अन्तर्गत सम्मिलित हो सकें, तथा उनके नामों मे परिवर्तन किया जा सके।

संविधान की दूसरी और तीसरी धारा में कहा गया है कि भारतीय संसद को इस बात का अधिकार होगा कि वह नये राज्यों को भारतीय सङ्घ में दाखिल कर सके तथा राज्यों की वर्तमान सीमाओं में अदला-बदली कर सके। परन्तु, राज्यों की सीमाओं में परिवर्तन करने से पहले, संविधान में कहा गया है कि राष्ट्रपति इस बात का प्रबन्ध करेंगे कि उन राज्यों के विधान मंडल के सदस्यों की राय मालूम कर लें जिन पर उस अदला-बदली का प्रभाव पड़ेगा संविधान में आगे कहा गया है कि इस प्रकार राज्यों की सीमाओं का परिवर्तन संविधान का सन्शोधन नहीं समझा जायगा और संसद के सदस्य बहुमत से इस प्रकार का प्रस्ताव पास कर सकेंगे।

संविधान में इस प्रकार का प्रबन्ध इसी दृष्टि से किया गया है जिससे 'भाषा' अथवा 'शासन की सुविधा', के आधार पर प्रान्तों का पुनर्संङ्गठन किया जा सके।

अविच्छिन्न सङ्घ—हमारे नये संविधान के अन्तर्गत राज्यों को इस बात की स्वतंत्रता नहीं होगी कि वह संघ से अलग हो सकें। इसी बात को स्पष्ट करने के लिए भारत का नाम (union of states) अर्थात् राज्यों का अविच्छिन्न सङ्घ रक्खा गया है। यह सङ्घ राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से केवल एक देश होगा; स्वतन्त्र देशों का समूह नहीं। इसके अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति को नागरिकता का केवल इकहरा अधिकार प्राप्त होगा। दोहरा संघ सरकार तथा राज्य की नागरिकता का अलग-अलग अधिकार नहीं। अमरीका के उदाहरण से प्रभावित होकर, जहाँ संघ बनने के पश्चात् वहाँ के राज्यों ने संघ सरकारों से संबन्ध विच्छेद करना चाहा, और उन्हें ऐसा

करने से रोकने के लिये वहाँ की सरकार को एक गृह-युद्ध करना पड़ा। भारतीय विधान में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि संघ के अन्तर्गत राज्यों को अलग होने की स्वतन्त्रता नहीं होगी।

नया संविधान संघात्मक है अथवा नहीं ?

हमारे नये संविधान के बहुत से आलोचक यह कहकर विधान की टीका-टिप्पणी करते हैं कि नया संविधान संघात्मक नहीं है। उनका कहना है कि इस संविधान में राज्यों की स्थिति नगरपालिकाओं जैसी कर दी गई है और उसको संघ-शासन-प्रणाली के अंतगत दिये जाने वाले अधिकार नहीं सौंपे गये हैं।

इस आलोचना का प्रतिकार करने से पहिले हम यह देखने का प्रयत्न करेंगे कि संघात्मक शासनों के मुख्य लक्षण क्या होते हैं। प्रसिद्ध राजनीतिक लेखक डाइसी ने संघ शासन के तीन मुख्य लक्षण बताए हैं :—

(१) लिखित और अपरिवर्त्तनशील संविधान (Written and rigid constitution)

(२) संघ तथा उसके अन्तर्गत राज्यों के बीच अधिकारों का स्पष्ट विभाजन (A clear demarcation of powers between the federation and the units)

और (३) संघ और राज्यों के बीच होने वाले संवैधानिक गति अवरोध का निपटारा करने के लिये एक स्वतंत्र तथा अधिकार-सम्पन्न उच्चतम न्यायालय की स्थापना।

(The existence of a competent and independent supreme court to settle disputes between the federation and the constituent units)

भारत के नये विधान में यह तीनों गुण पूर्ण रूप से विद्यमान हैं। हमारा नया विधान लिखित है तथा उसके वह मूलगत सिद्धान्त जिनके द्वारा राज्यों तथा संघ सरकार के बीच अधिकार विभाजन किया गया है, अपरिवर्तनशील (rigid) है। कारण उनमें केवल उस समय परिवर्तन किया जा सकता है जब संघ संसद् के दो-तिहाई सदस्य उसके विषय में प्रस्ताव पास करें तथा

कुछ दशाओं में वह प्रस्ताव आधे से अधिक राज्यों की विधान सभाओं द्वारा स्वीकार कर लिया जाय। संघ शासन की दूसरी आवश्यक शर्त अर्थात् संघ तथा राज्यों के बीच अधिकार का विभाजन भी हमारे नये संविधान में पूर्ण रूप से विद्यमान है। संविधान में कहा गया है कि राज्यों की सरकार को ६६ विषयों पर तथा संघ सरकार को ९७ विषयों पर कानून पास करने का अधिकार होगा। दोनों शक्तियों में से कोई भी एक दूसरे के अधिकार-क्षेत्र में हस्तक्षेप न कर सकेगी। राज्य सूची में वर्णित विषयों पर संघ सरकार को उस समय तक कानून पास करने का अधिकार नहीं होगा, जब तक दो या दो से अधिक राज्यों की विधान सभाएँ उससे स्वयं ऐसा करने के लिए न कहें या किसी विपत्ति काल में, राष्ट्रपति संकट की घोषणा करके, यह अधिकार अपने हाथ में न ले लें। साधारण दशा में दोनों शक्तियाँ अपने अपने अधिकार क्षेत्र में काम करने के लिये पूर्ण रूप से स्वतंत्र होंगीं।

अन्त में, संघ सरकार की तीसरी आवश्यक शत की पूर्ति के लिये संविधान में एक उच्चतम न्यायालय की स्थापना की गई है जिसका मुख्य कार्य संघ तथा राज्यों के बीच उत्पन्न हुए संवैधानिक अवरोधों को दूर करना होगा किसी भी राज्य की सरकार को इस बात की पूर्ण स्वतन्त्रता होगी कि वह कोई भी ऐसा विषय उच्चतम न्यायालय के समक्ष उपस्थित कर सके जिसमें उसे संघ सरकार के विरुद्ध उसके कार्य क्षेत्र में हस्तक्षेप करने की शिकायत हो।

इस प्रकार हम देखते है कि हमारा नया संविधान पूर्ण रूप से संघात्मक है और उसमें संघ शासनों की वह सभी विशेषताएँ विद्यमान हैं जो संसार के दूसरे विधानों में पाई जाती हैं।

भारतीय संघ संविधान की विचित्रता (Distinguishing Factors of the Indian Constitution)

परन्तु इतना होने पर भी हमारे विधान निर्माताओं ने दूसरे देशों के संघात्मक विधानों की दास वृत्ति से नकल नहीं की है। उन्होंने उन संविधानों की उन सभी अच्छाइयों को ग्रहण करने का प्रयत्न किया है जो भारतीय परिस्थिति के अनुकूल हैं तथा उनमें वह आवश्यक परिवर्तन कर दिये गये हैं जिनसे हम उनकी त्रुटियों से बचे रहें। इसी दृष्टि से हमारा नया संविधान

दूसरे संविधानों के समान संघात्मक होने पर भी अपना एक पृथक अनोखापन रखता है। उदाहरणार्थ :—

(१) हमारे संविधान में भारत के नागरिकों को इकहरी नागरिकता के अधिकार प्रदान किये गये हैं, अमरीका के संविधान की भाँति दोहरी नागरिकता के अधिकार नहीं। संयुक्त राष्ट्र अमरीका में प्रत्येक राज्य की सरकार को यह अधिकार प्राप्त है कि वह अपनी अधिकार सीमा में रहने वाले नागरिकों के लिये दूसरे राज्यों से पृथक इस प्रकार के कानून बना सके जिनके द्वारा उन्हें नौकरी, स्कूलों में भर्ती, चिकित्सालयों में प्रवेश, व्यापार तथा स्वतंत्र व्यवसाय इत्यादि सम्बन्धी विशेष अधिकार दिये जा सकें। भारत में राज्यों की सरकार को यह अधिकार नहीं दिया गया है। नये संविधान के अन्तर्गत प्रत्येक भारतीय को चाहे वह किसी भी राज्य में रहे, समान अधिकार प्राप्त होंगे।

(२) संयुक्त राष्ट्र अमरीका में राज्यों को इस बात का अधिकार है कि वह जनतंत्र सत्ता के आधीन जिस प्रकार का चाहें अपने लिये विधान बनायें तथा उसमें जब चाहें परिवर्तन कर सकें। भारत में इसके विपरीत प्रत्येक राज्य का विधान संविधान सभा द्वारा ही बनाया गया है। राज्यों की सरकारों को इस बात का अधिकार नहीं दिया गया कि वह उस विधान में किसी प्रकार का परिवर्तन अथवा संशोधन कर सकें।

(३) संघ विधानों में प्रायः अधिकार विभाजन के साथ-साथ देश में दोहरी धारा सभा, कार्यकारिणी न्यायपालिका तथा सरकारी प्रबन्ध का सङ्गठन होता है। इससे देश के शासन प्रबन्ध, न्याय तथा कानूनों में एक प्रकार का दोहरापन आ जाता है। यह सच है कि कुछ सीमा तक एक विशाल देश में स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार शासन प्रबन्ध में कुछ विभिन्नता अवश्य रहनी चाहिये परन्तु जहाँ तक मौलिक विषयों तथा कानूनों का सम्बन्ध है, वह सारे देश के लिये एक से ही होने चाहिये। यदि ऐसा न हो तो एक ही देश के नागरिकों को एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में जाने, वहाँ पर बसने, व्यापार करने अथवा पढ़ने-लिखने इत्यादि के कार्य में भारी असुविधा का सामना करना पड़े। हमारे देश में शासन प्रबन्ध की यह एकता (१) समस्त

देश के लिए एक उच्च न्यायालय, (२) एक प्रकार के मौलिक दीवानी व फौजदारी कानून तथा (३) एक प्रकार की ऐडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस का सङ्गठन कर के प्राप्त की गई है।

हमारे संविधान में सारे देश के लिये न्यायपालिका का सङ्गठन समान रूप है। देश की सर्वोच्च न्यायालय सुप्रीम कोर्ट को सभी राज्यों की हाईकोर्टों तथा उनके नीचे काम करने वाली कचहरियों पर अधिकार प्रात है। सब हाईकोर्टों की अपीलें सुप्रीम कोर्ट के समक्ष पेश होती हैं। कानूनों की एकता बनाये रखने के लिये दीवानी व फौजदारी कानून समवर्त्ती विषयों की सूची में रक्खे गए हैं। इसके अतिरिक्त शासन को एक सूबे में बाँधने के लिये सभी राज्यों के लिए एक ही अखिल भारतीय सर्विस का आयोजन किया गया है। इस सर्विस के सदस्य सभी राज्यों में उच्च अधिकारी नियुक्त किये जायेंगे। इस प्रकार संसार के दूसरे देशों के संघ विधानों में उत्पन्न होने वाली शासन सम्बन्धी विभिन्नता का हमारे नये संविधान में अन्त करने का प्रयत्न किया गया है।

(४) संघीय विधानों का एक और बड़ा दोष क़ानूनीपन (Legalism) तथा जकड़बन्दी (Rigidity) होता है। ऐसा होना स्वाभाविक ही है। कारण, संघ शासन के अन्तर्गत राज्यों तथा सरकार के बीच अधिकारों का विभाजन होता है। यदि यह विभाजन आसानी से बदला जा सके तो फिर उसकी महत्ता क़ायम नहीं रहती। परन्तु इस जकड़बन्दी से संघ सरकार एकात्मक शासनों की अपेक्षा कमजोर तथा बलहीन हो जाती है और राष्ट्रीय सङ्कट अथवा देश पर किसी प्रकार की विपत्ति आ पड़ने के समय, वह पूरी शक्ति के साथ कार्य नहीं कर सकती। वैसे भी वर्तमान काल में आने जाने के साधनों की सुविधा से स्थानीय विषय राष्ट्रीय और राष्ट्रीय विषय अंतर्राष्ट्रीय विषय बनते जा रहे हैं। इस कारण, संघात्मक विधान आजकल अधिक पसन्द नहीं किये जाते। परन्तु हमारे विधान निर्माताओं ने इस प्रकार का संविधान बनाया है कि वह इन दोनों ही दोषों से बचा रहे और शान्ति काल और सङ्कट की परिस्थिति में आवश्यकतानुसार कार्य कर सके। हमारे संविधान का इसलिये सबसे बड़ा गुण वह है जिसके द्वारा विपत्ति काल में वह एकात्मक हो जाता है और शान्ति काल में संघात्मक ही रहता है। यदि राष्ट्रपति किसी समय संविधान की

३५२ धारा के अंतर्गत देश में सङ्कट की घोषणा कर दें तो सारा देश एक ही केन्द्र से शासित होने लगता है। इस घोषणा के आधीन संघ सरकार सारे राज्यों के लिये स्वयं कानून बना सकती है, उनकी कार्यकारिणी को मनचाहा आदेश दे सकती है तथा संघ विधान के अर्थ सम्बन्धी भाग को स्थगित कर सकती है।

(५) संविधान को और भी अधिक नमनीय बनाने के लिये हमारे विधान निर्माताओं ने आस्ट्रेलिया के संविधान से उदाहरण ग्रहण किया है। उन्होंने संघ तथा राज्य की सरकारों के बीच अधिकार का विभाजन इस प्रकार किया है कि संघ सरकार उन ६७ विषयों के अतिरिक्त जो उसकी अधिकार सीमा के अंतर्गत रक्खे गये हैं, ४७ और ऐसे विषयों पर क़ानून बना सकती है जो संविधान की समवर्ती सूची में दिए गये हैं। इस योजना से यह लाभ हुआ है कि भारत की केन्द्रीय सरकार बहुत से राष्ट्रीय महत्ता के विषयों पर सारे देश के लिए समान क़ानून बना सकती है। आस्ट्रेलिया के विधानों में तो संघ सरकार को केवल तीन विषयों पर ही क़ानून बनाने का अधिकार प्राप्त है परंतु भारत में संघ सरकार को यह अधिकार ६७ विषयों पर दिया गया है।

इसके अतिरिक्त, सविधान की २४६ धारा के अंतर्गत संघ सरकार को यह अधिकार भी प्रदान किया गया है कि यदि किसी समय राज्यपरिषद् यह अनुभव करे कि राज्य सूची में वर्णित स्थानीय विषय राष्ट्रीय महत्ता का विषय बन गया है तो वह दो-तिहाई बहुमत से प्रस्ताव पास कर के ऐसे विषय को संघ सरकार के अधिकार-क्षेत्र में दे सकती है। इस प्रकार समय के परिवर्तन के साथ हमारे नये विधान में विकास व फैलाव के आवश्यक गुण विद्यमान हैं। जहाँ तक सङ्कटकालीन स्थिति का सम्बंध है, यह हम पहिले ही देख चुके हैं कि विधान की २५०वीं धारा के अंतर्गत संघ सरकार राज्यों के लिए क़ानून बना सकती है।

एक तीसरी विधान की २५२ धारा के अंतर्गत दो या दो से अधिक राज्यों की विधान सभाएँ संघ सरकार से प्रार्थना कर सकती हैं कि वह उनके लिए किन्हीं राज्य सूची के विषयों पर क़ानून बना दे। इस प्रकार हम देखते हैं कि

हमारा नया विधान अत्यन्त नमनीय (Flexible) है और उसमें समय की परिस्थिति के अनुसार कार्य करने की शक्ति है।

(६) अन्त में, हमारे संविधान की एक और विशेषता यह है कि वह राज्यों तथा संघ सरकार के बीच अधिकार विभाजन के सिद्धान्त सम्बंधी विषयों को छोड़ कर और क्षेत्रों में आसानी से बदला जा सकता है। विधान में कहा गया है कि संघ संसद् बहुसंख्यक सदस्यों की उपस्थिति में दो-तिहाई बहुमत से विधान के ऐसे किसी भी भाग में परिवर्तन कर सकता है।

अतः हम देखते हैं कि हमारे विधान निर्माताओं ने नये विधान को दूसरे सभी संघ शासनों के दोषों से बचाने का प्रयत्न किया है और भारत की विशेष परिस्थितियों का ध्यान रख कर देश में एक ऐसे संघ शासन की स्थापना की है जिसमें एकात्मक तथा संघात्मक दोनों ही शासनों के गुण विद्यमान हैं।

क्या भारत के लिये एकात्मक विधान अच्छा रहता ?

वैसे तो अधिकतर लोग हमारे संविधान के जन्मदाताओं की इसीलिये आलोचना करते हैं कि उन्होंने राज्यों की सरकारों को विशेष अधिकार प्रदान नहीं किये और उनके कार्य-क्षेत्र पर जगह-जगह कुठाराघात किया है; परंतु इस देश में ऐसी जनता की भी कमी नहीं है जो समझती है कि राष्ट्र की वर्तमान स्थिति में उसके लिये एकात्मक शासन विधान ही सबसे अधिक उपयुक्त रहता। इन लोगों का कहना है कि (१) भारत की स्वतंत्रता को दृढ़ बनाने, (२) देश का एकीकरण करने, (३) हमारे राष्ट्रीय जीवन में प्रान्तीयता, भाषावाद तथा साम्प्रदायिकता की पृथक्करण भावनाओं का मुकाबिला करने तथा (४) राष्ट्र-विरोधी साम्यवादी शक्तियों को दबाने के लिये, हमारे देश में एक सर्व-शक्ति सम्पन्न केन्द्रीय सरकार की आवश्यकता थी।

परंतु, फिर भी यदि हमारे विधान निर्माताओं ने एक संघ शासन की स्थापना की तो इसके मुख्य रूप से निम्न कारण थे :—

(१) देश की विशालता—१२ लाख वर्गमील के विस्तृत क्षेत्र के लिए एक ही केन्द्रीय सरकार की स्थापना शासन की कुशलता तथा सुविधा की दृष्टि से उचित न थी।

(२) सांस्कृतिक विकास तथा भाषा की उन्नति—हमारे देश के

विभिन्न भागों में भाषा, साहित्य, रीति-रिवाज, उत्सव, त्यौहार, सङ्गीत तथा दूसरी कलाओं की उन्नति तथा सांस्कृतिक विकास के लिए संघीय सरकार अधिक उपेक्षित थी।

(३) प्रजातन्त्रात्मिक दृष्टिकोण—संघ सरकार के अंतर्गत देश की जनता को शासन प्रबंध में भाग लेने का अधिक अवसर मिलता है। एकात्मक सरकार में इसके विपरीत निरंकुशात्मक शासन के अधिक अंश होते हैं।

(४) विकेन्द्रीयकरण योजना—हमारे राष्ट्र-पिता महात्मा गाँधी विकेन्द्रीयकरण के सिद्धान्त में विश्वास रखते थे। वह चाहते थे कि शासन की इकाइयाँ सारे देश में फैली रहें और राज्य की वास्तविक सत्ता ग्राम पञ्चायतों के हाथ में हो। यह आदर्श संघ शासन के आधीन अधिक आसानी से पूरा हो सकता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारे विधान निर्माताओं के सम्मुख एकात्मक व संघीय विधानों की अच्छाइयों को अपनाने तथा उन दोनों शासन प्रथाओं के दोषों से बचने का कठिन उद्देश्य था। यह उद्देश्य अत्यंत ही सफलता तथा सुन्दरता के साथ पूरा किया गया है। हमारे नये विधान में सङ्कट के समय एकात्मक रूप से और साधारण शांति के वातावरण में संघात्मक रूप से कार्य कर सकने की अभूतपूर्व क्षमता है।

नये विधान में नागरिकता का अधिकार

हमारे नव संविधान में नागरिकता की उचित परिभाषा करने में बहुत अधिक समय लगा। कारण, भारत के विभाजन तथा उसके पश्चात् शरणार्थियों की समस्या ने इस कार्य को अत्यन्त जटिल बना दिया था। इस समस्या की पूर्ति का नये विधान में पूरा प्रयत्न किया गया है। परन्तु नागरिकता की प्राप्ति या उसकी समाप्ति के लिये संविधान के लागू होने पर कौन से लोग भारत के नागरिक माने जायेंगे। नये संविधान के अन्तर्गत नागरिकता का अधिकार भारत में तीन श्रेणी के लोगों को दिया गया है। (१) भारत के जन्मजात नागरिक, (२) पाकिस्तान से भारत आने वाले शरणार्थी और (३) विदेशों में रहने वाले अनेक भारतीय।

पहली श्रेणी के लोगों को यह अधिकार देने के लिये संविधान में कहा गया है कि संविधान के आरंभ होते समय हर वह व्यक्ति जो भारत में जन्मा हो या जिसके माता-पिता या दोनों में से कोई भारत में जन्मा हो, अथवा जो संविधान आरंभ होने के कम से कम ५ वर्ष पूर्व से भारत में रहता हो, परन्तु जिसने किसी अन्य देश की नागरिकता स्वीकार न कर ली हो, भारत का नागरिक माना जायगा।

दूसरी श्रेणी अर्थात् पाकिस्तान छोड़ कर भारत आने वाले हिन्दू और सिखों को नागरिकता का अधिकार प्रदान करने के लिये संविधान में कहा गया है कि जो व्यक्ति स्वयं या जिसके माता-पिता या बाबा-दादी या नाना-नानी या इनमें से कोई अविभाजित भारत में पैदा हुए हों और जो १ जुलाई १९४८ से पूर्व पाकिस्तान से आकर भारत में बस गये हों, उन्हें भारत का नागरिक माना जायगा। जो लोग जुलाई १९४८ के पश्चात् पाकिस्तान से भारत आये हैं उनके लिये विधान में कहा गया है कि वह केवल उस दशा में नागरिक समझे जायेंगे, जब वह भारत सरकार द्वारा नियुक्त किये हुये अफ़सरों के सम्मुख आवेदन-पत्र देकर २६ जनवरी, १९५० से पहिले, अपना नाम रजिस्टर करा लें। परन्तु ऐसे व्यक्तियों के नाम की रजिस्ट्री केवल उस दशा में हो सकेगी जब वह आवेदन पत्र देने के पूर्व कम से कम ६ महीनों से भारत में रह रहे हों। जो व्यक्ति पहिली मार्च सन् १९४७ के पश्चात् भारत छोड़ कर पाकिस्तान चले गये हैं, उन्हें भारत का नागरिक नहीं माना जायगा; परंतु उन राष्ट्रवादी मुसलमानों की सुविधा के लिये जो स्वयं या जिनके परिवार के सदस्य साम्प्रदायिक दंगों के समय भय के कारण पाकिस्तान चले गये थे, परंतु बाद में पक्का परमिट पाकर भारत लौट आये हैं उनको नागरिकता का अधिकार दे दिया गया है।

अन्त में, तीसरी श्रेणी के लोगों को नागरिकता का अधिकार प्रदान करने के लिये संविधान में कहा गया है कि जो लोग आजकल विदेशों में रहते हैं परन्तु जिनका स्वयं या जिनके माता-पिता या बाबा-दादी या नाना नानी में से किसी का जन्म अविभाजित भारत में हुआ था, वह लोग, यदि वह विदेशों में स्थिति भारत के राजदूत के दफ्तर में प्रार्थना-पत्र देकर अपने

नाम की रजिस्ट्री करा लेंगे तो उन्हें भारतीय नागरिकता का अधिकार दे दिया जायगा। साथ ही संविधान में कहा गया है कि जो व्यक्ति विदेशी नागरिकता ग्रहण करेंगे, उन्हें भारत का नागरिक बनने का अधिकार नहीं होगा।

नागरिकता के सम्बन्ध में संविधान की व्यवस्था अन्तिम नहीं रक्खी गई है। भारतीय संसद् को इस बात का अधिकार दिया गया है कि वह इस विषय में एक विस्तृत कानून पास कर सके। ऐसा इसलिये किया गया है, जिससे समय की आवश्यकतानुसार भारतीय संसद् इस दशा में उचित परिवर्तन संविधान का संशोधन न समझा जाय। संविधान में दी गई नागरिकता की परिभाषा पूर्ण नहीं है, उदाहरणार्थ उसमें विदेशियों के भारतीय नागरिकता प्राप्त करने के सम्बन्ध में कोई आयोजन नहीं है। पाकिस्तान से भारत आने वाले उन हिंदुओं के लिये भी उचित व्यवस्था नहीं है जो २६ जनवरी के पश्चात् पूर्वी बंगाल से भाग कर पश्चिमी बङ्गाल में आ रहे हैं। इन्हीं बातों का विचार रख कर, संविधान में, संसद् को इस बात का अधिकार दिया गया है कि वह बाद में इन कमियों को पूरा करने के लिये, हर प्रकार से पूर्ण, भारतीय नागरिकता सम्बन्धी कानून बना सके। नागरिकता की प्राप्ति व उसके लोप के लिए भी संसद् द्वारा ही कानून बनाया जायगा।

नये विधान के अन्तर्गत नागरिकों के मौलिक अधिकार

भारतीय संविधान की नागरिकों को सबसे बड़ी देन, उनके मौलिक अधिकार हैं। यह वह अधिकार हैं जो प्रत्येक भारतवासी को धर्म, जाति, लिंग तथा जन्म स्थान के भेद-भाव के बिना समान रूप से दिये गये हैं। यह अधिकार राज्य की नींव हैं। यह वह गुण हैं जिनके कारण राष्ट्र की शक्ति में नैतिकता का समावेश होता है। यह इस अर्थ में प्राकृतिक अधिकार हैं कि वे जीवन की अच्छाई तथा व्यक्तित्व के विकास के लिये आवश्यक हैं। भारतवासियों को प्रथम बार यह अधिकार नये विधान के अन्तर्गत प्रदान किये गये हैं। इससे पहिले अंगरेजों के काल में उन्हें किसी प्रकार की स्वतंत्रता प्राप्त नहीं थी और सहस्रों की संख्या में उन्हें प्रति वर्ष बिना मुकद्दमे जेल की कोठरियों में बन्द कर दिया जाता था। उन्हें न किसी प्रकार की भाषण देने की स्वतंत्रता थी, न संघ बनाने की, और न समाचार पत्र प्रकाशित करने की।

नये विधान के अन्तर्गत नागरिकों को दो प्रकार के मौलिक अधिकार प्रदान किये गये हैं। एक वह, जिनके बारे में अदालत में कार्यवाही की जा सकती हैं। अङ्गरेजी में इन अधिकारों को (Justiciable) अधिकार कहा जाता है। दूसरे, वह अधिकार हैं जिन पर चलना संघ तथा राज्यों की सरकार के लिये अनिवार्य होगा, परंतु उनके सम्बन्ध में न्यायालयों में कार्यवाही न की जा सकेगी। इन अधिकारों को अङ्गरेजी में (non-justiciable) अधिकार कहा जाता है।

नागरिकों के न्यायालयों द्वारा सुरक्षित मौलिक अधिकार

प्रथम श्रेणी में नागरिकों को जो मौलिक अधिकार प्राप्त होंगे उनका वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है :—

(१) समानता का अधिकार (२) स्वतन्त्रता का अधिकार (३) धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार (४) संस्कृति तथा शिक्षा सम्बन्धी अधिकार (५) सम्पत्ति का अधिकार और (६) संवैधानिक प्रतिकार सम्बन्धी अधिकार।

समानता का अधिकार

नये संविधान में यह एक ऐसा अधिकार है जो नागरिकों को बिना किसी रोक-टोक के प्रदान किया गया है। इस अधिकार के द्वारा किसी नागरिक के विरुद्ध धर्म, जाति, लिंग, तथा जन्म-स्थान के कारण भेद-भाव करना निषिद्ध ठहराया गया है। संविधान में कहा गया है कि सब नागरिकों को दूकानों, सार्वजनिक भोजनालयों, होटलों, सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों में, प्रवेश तथा उनके उपयोग का बराबर का अधिकार होगा। हरिजनों के साथ किसी प्रकार की छूतछात नहीं बरती जायगी। राज्य की नौकरियाँ प्राप्त करने का सब नागरिकों को समान अधिकार होगा। केवल धर्म, वंश, जाति अथवा लिंग के आधार पर किसी व्यक्ति को नौकरी प्राप्त करने के अवसर से वंचित नहीं रक्खा जायगा। केवल पिछड़ी हुई जातियों के सदस्यों के लिये जिन्हें अभी तक सरकारी नौकरियों में पर्याप्त स्थान प्राप्त नहीं हैं, कुछ स्थान सुरक्षित रक्खें जायेंगे।

सामाजिक समानता की ओर एक और महत्त्वपूर्ण कदम जो हमारे संविधान ने उठाया है वह हर प्रकार के सरकारी खिताबों की प्रथा का मिटा

देना है। गणतन्त्र भारत में किसी भी नागरिक को विश्वविद्यालयों की उपाधियों को छोड़कर और किसी प्रकार के राय साहबी, राय बहादुरी या सर इत्यादि के खिताब नहीं दिये जायेंगे।

स्वतन्त्रता का अधिकार

इस शीर्षक के अन्तर्गत नागरिकों को भाषण की स्वतन्त्रता, शांतिपूर्वक बिना हथियार इकट्ठा किये सभा करने की स्वतन्त्रता, संघ बनाने की स्वतंत्रता भारत के किसी भी प्रांत में स्वतन्त्रतापूर्वक घूमने, निवास करने या बस जाने की स्वतन्त्रता तथा व्यापार करने की स्वतन्त्रता प्रदान की गई है। परंतु इन अधिकारों पर, संविधान में कहा गया है कि सरकार सार्वजनिक हित, सुव्यवस्था, सदाचार, तथा राज्य की सुरक्षा के विचार से कोई भी रोक लगा सकेगी। ऐसा इसलिये किया गया है कि नागरिक इन अधिकारों का दुरुपयोग न करें। अधिकार केवल कर्तव्य की दुनिया में ही जीवित रह सकते हैं। किसी भी अधिकार का अर्थ स्वच्छंदतापूर्वक कार्य करना नहीं होता। उदाहरणार्थ, भारत की स्वतन्त्रता का यह अर्थ नहीं कि किसी व्यक्ति के जो मन में आये कहे, किसी का अपमान अथवा मानहानि करे या जनता को हिंसात्मक कार्य करने के लिये उकसाये। इस प्रकार के अनियन्त्रित अधिकार देने से अराजकता के अतिरिक्त दूसरा परिणाम नहीं निकलता।

इसलिये स्वतन्त्रता सम्बन्धी संविधान की १९वीं धारा के दूसरे अनुच्छेद में कहा गया था कि स्वतन्त्रता का आशय यह नहीं होगा कि कोई व्यक्ति किसी की मान हानि कर सके, या राज्य के विरुद्ध षड्यंत्र कर सके। इस प्रकार की रोक संसार के प्रत्येक संविधान में ही लगाई जाती है।

संविधान का संशोधन

परन्तु, संविधान में वर्णित स्वतन्त्रता सम्बन्धी उपरोक्त रोक के होते हुये भी भारत की अनेक हाई कोर्टों द्वारा सन् १९५० में इस प्रकार के फैसले दिये गये जिनमें कहा गया कि भारत के नागरिकों का भाषण स्वतन्त्रता सम्बन्धी मौलिक अधिकार इतना व्यापक है कि उसके अंतर्गत उन्हें हत्या का प्रचार करने की भी आज्ञा है। संविधान से इस दोष को दूर करने के लिये, १२ मई १९५१ को, पं० जवाहरलाल नेहरू ने भारतीय संसद् में संविधान सम्बन्धी

प्रथम संशोधन पेश किया। इस संशोधन में भाषण की स्वतन्त्रता के विषय में रोक लगाई गई है :—

(१) सरकार को अधिकार होगा कि राज्य की सुरक्षा एवं अन्य राष्ट्रों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाए रखने के लिये स्वतन्त्रता सम्बन्धी अधिकार पर रोक लगा सके।

(२) सरकार को यह भी अधिकार होगा कि वह सार्वजनिक व्यवस्था व्यक्तिगत मानहान तथा किसी अपराध के लिये उत्तेजना देने पर रोक लगाने के लिये कानून बना सके।

संविधान के इस संशोधन का जोरदार विरोध किया गया। विशेषकर समाचार पत्रों की ओर से कहा गया कि इस संशोधन के पास होने से राज्यों की सरकारों क. यह अधिकार प्राप्त हो जायगा कि वह समाचार पत्रों के विरुद्ध सैन्सर सम्बन्धी तथा दूसरे दमनकारी कानून पास कर सकें। अखिल भारतीय समाचार पत्र संघ की ओर से इन संशोधनों को एकदम अनुचित बताया गया।

संसद् में प्रधान मन्त्री तथा गृह मन्त्री ने समाचार पत्रों को आश्वासन दिलाया कि सरकार कभी स्वतन्त्रता छीनने के लिये किसी प्रकार का कानून नहीं बनायेगी। उन्होंने कहा कि संविधान का संशोधन केवल इसलिये किया जा रहा है कि समाज के शत्रु हिंसा, मारकाट और अराजकता का प्रचार न कर सकें, और गैर जिम्मेदार समाचार पत्र झूठे, अनैतिक तथा हिंसात्मक लेखों द्वारा सरकार के विरुद्ध मोरचा न बनायें। प्रस्तावित संशोधन में उन्होंने रोक शब्द से पहिले उचित (Reasonable) शब्द जोड़ कर यह भी स्पष्ट कर दिया कि देश की सर्वोच्च अदालत को इस बात का अधिकार होगा कि वह किसी ऐसे कानून को अवैध घोषित कर दे जिसके अंतर्गत समाचार पत्रों पर अनुचित रोक लगाई जाय।

संशोधन का सबसे अधिक विरोध यह कह कर किया जा रहा था कि उसके आधीन किसी भी ऐसे व्यक्ति को अपराधी घोषित किया जा सकेगा जो लोगों को साधारण कानून तोड़ने के लिये भी उकसाए। विरोधियों का कहना था कि सरकार को केवल ऐसे ही कृत्य एवं भाषण अवैध घोषित करने चाहिए

जिनसे हत्या का प्रचार किया जाय एवं जिनसे राज्य की सुरक्षा को किसी प्रकार का खतरा पैदा हो। श्री राजगोपालाचारी ने इस दलील का जवाब देते हुये संसद् के सदस्यों को बताया कि प्रत्येक अवैध कार्य चाहे उसके द्वारा हिंसा का प्रचार किया जाय अथवा दूसरे कानूनों को तोड़ने का आदेश दिया जाय, एक सा ही निंदनीय है। उन्होंने पूछा कि क्या चोर-बाजारी करने के लिये लोगों को उकसाना या शराब बंदी का कानून तोड़ने के लिये लोगों को आवाहन देना, उतने ही निंदनीय कार्य नहीं हैं जितने हिंसा का प्रचार करना? आगे चलकर उन्होंने समझाया कि संविधान का संशोधन किसी प्रकार का कानून पास किया जाना नहीं है। संशोधन से संसद् को केवल कानून पास करने का अधिकार प्राप्त है। किसी समय उस संशोधन के आधीन संसद् कोई कानून पास करेगी तो सदस्यों को एक बार फिर अवसर मिलेगा कि वे कानून की अच्छाई और बुराइयों पर पूरी तरह से विचार कर सकें।

जमींदारी उन्मूलन के लिये संविधान का संशोधन

संविधान की १९वीं धारा के अतिरिक्त, प्रस्तावित संशोधन में इस बात का प्रबन्ध भी किया गया कि जमींदारी प्रथा की समाप्ति के लिये विभिन्न राज्यों की सरकारों द्वारा जो कानून बनाये गये हैं उन्हें सुप्रीम कोर्ट द्वारा, अवैध घोषित न कर दिया जाय। इसलिये १९वीं धारा के साथ साथ संविधान की ३१वीं धारा में भी संशोधन पेश किया गया। इस संशोधन में कहा गया कि बिहार, बंबई, मद्रास, मध्य प्रदेश, एवं उत्तर प्रदेश की सरकारों द्वारा जो जमींदारी उन्मूलन कानून पास किये गये हैं उन्हें मौलिक अधिकारों की आड़ में, सुप्रीम कोर्ट द्वारा, किसी भी दशा में, रद्द नहीं किया जायगा।

भारत सरकार को इस संशोधन की आवश्यकता इसलिये अनुभव हुई कि बिहार हाई कोर्ट द्वारा उस प्रान्त का जमींदारी उन्मूलन कानून अवैध घोषित कर दिया गया था। दूसरे प्रान्तों में भी सुप्रीम कोर्ट की सहायता से इन कानूनों को अवैध घोषित कराने का प्रयत्न किया जा रहा था और सरकार यह नहीं चाहती थी कि इस आवश्यक कानून को न्यायालयों की दया पर छोड़ दिया जाय।

नजरबन्दी का कानून—संविधान की २२वीं धारा के अन्तर्गत २५ फरवरी, सन् १६५० को संसद् ने गृह मन्त्री सरदार पटेल के सुझाव पर एक वर्ष के लिए एक ऐसा कानून पास किया जिसके द्वारा भारत सरकार किसी भी व्यक्ति को राष्ट्र की सुरक्षा अथवा देश में आंतरिक शांति बनाए रखने के लिये, बिना मुकदमे, १ वर्ष के लिये नजरबन्द कर सकती थी। परन्तु संविधान में दी गई आज्ञाओं का पालन करने के हेतु इस कानून में कहा गया था कि ऐसा कोई भी व्यक्ति उस समय तक नजरबन्द नहीं किया जायगा जब तक जिला या सब डिविजनल मजिस्ट्रेट या कमिश्नर पुलिस, ऐसे व्यक्ति की गिरफ्तारी के तुरन्त पश्चात् राज्य की सरकार को यह न बताएँ कि उस व्यक्ति के विरुद्ध क्या अभियोग हैं? अभियुक्त को भी इसी प्रकार उसके विरुद्ध लगाये गये आरोपों से अवगत कराना होता था। इसके अतिरिक्त गिरफ्तारी के ६ सप्ताह के भीतर, ऐसे व्यक्ति का मामला एक ऐसी परामर्श समिति के सम्मुख पेश किया जाता था जिसके दो सदस्य हाई कोर्ट के जज होते थे, या जज रह चुके थे, अथवा जज नियुक्त किये जाने की योग्यता रखते थे। इस परामर्श समिति के सम्मुख अभियुक्त को भी लिखकर अपनी सफाई पेश करने का अधिकार दिया गया था।

इस प्रकार के कानून को इतने शीघ्र पास करने की आवश्यकता इसलिये अनुभव हुई कि २६ जनवरी के तुरन्त पश्चात् हमारे देश की हाई कोर्टों में, हैबियस कार्पस पैटिशन के आधार पर कम्यूनिस्ट नजरबन्दों को छोड़ना आरंभ कर दिया था। इन हाई कोर्टों का कहना था कि नये संविधान के लागू होने के पश्चात् भारत सरकार के वह पुराने कानून मान्य नहीं ठहराये जा सकते जो जनता के मौलिक अधिकारों की अवहेलना करते हैं। इसीलिये संविधान में दी गई २२वीं धारा के आदेशानुसार संसद् को उपरोक्त कानून पास करना पड़ा।

उपरोक्त कानून केवल एक वर्ष के लिए पास किया गया था। इसलिए फरवरी सन् १६५१ में श्री सी० राजगोपालाचारी ने संसद् से फिर प्रार्थना की कि वह 'नजरबन्दी कानून' को एक वर्ष के लिए और लागू करने का अधिकार दे दे। उन्होंने कहा कि भारत में आज भी तोड़-फोड़, हिंसा एवं

साम्प्रदायिक वैमनस्य की भावना भड़काने वाले व्यक्तियों के विरुद्ध कड़ी कार्यवाही करने की आवश्यकता है। ऐसे लोगों को यह कहकर स्वतंत्र नहीं छोड़ा जा सकता कि जिस समय वह कोई अपराध करेंगे तो उन्हें साधारण कानून के मातहत गिरफ्तार कर लिया जायगा। उन्होंने बताया कि अपराध को उसके किये जाने से पहिले ही रोकने का प्रबन्ध होना चाहिए।

परन्तु यह देखने के लिए कि इस कानून की जकड़बंदी में समाज के शांतिप्रिय तथा निरपराध व्यक्ति न आ जायँ उन्होंने 'बिना मुक़दमे नजरबन्दी' कानून की धाराओं को और भी उदार बना दिया। उदाहरणार्थ नये संशोधित कानून में कहा गया है कि अभियुक्तों को वकील से सलाह लेने की सुविधा दे दी जायगी। साथ ही सरकारों को आदेश दिया गया है कि वह गिरफ्तारी के तुरन्त पश्चात्, शीघ्र से शीघ्र अभियुक्त को उन कारणों से अवगत कराएँ जिनकी वजह से उसे गिरफ्तार किया गया है। दस सप्ताह से अधिक किसी भी व्यक्ति को बिना परामर्श समिति की आज्ञा के नजरबन्द नहीं रक्खा जा सकेगा। अभियुक्तों के पैरोल पर छोड़ने की व्यवस्था भी कर दी गई है।

सुप्रीम कोर्ट और नज़रबंदी का क़ानून

नजरबन्दी कानून के आधीन भारत की सर्वोच्च न्यायालय में अनेक ऐसे मुक़दमे पेश किए गये जिनमें सुप्रीम कोर्ट से प्रार्थना की गई कि वह नजरबन्दी कानून को अवैध घोषित कर दे। परन्तु जुलाई सन् १९५० में श्री गोपालन के मुकदमे का फैसला देते समय सुप्रीम कोर्ट ने ठहराया कि नजरबन्दी कानून वैध है; केवल उसकी वह धारा अवैध है जिसके मातहत राज्य की सरकारें न्यायालय को भी वह कारण बताने से मना कर सकती थीं जिनकी वजह से किसी अभियुक्त को बन्दी बनाया गया था।

हमारे देश की सुप्रीम कोर्ट ने नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करने के लिए अत्यन्त निष्पक्षता एवं दिलेरी से कार्य किया है। उसने कितने ही मुक़दमों में सैकड़ों अभियुक्तों को यह कह कर छोड़ा है कि उनके विरुद्ध अभियोग स्पष्ट नहीं हैं।

धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार

भारत में हर व्यक्ति को अन्तःकरण तथा धर्म की स्वतंत्रता प्रदान करने के

लिये संविधान की २५वीं धारा में प्रबन्ध किया गया है। इस धारा में कहा गया है कि सामाजिक कल्याण, सदाचार तथा स्वास्थ्य के नियमों का विचार रखते हुये प्रत्येक व्यक्ति को धर्म की स्वतंत्रता प्राप्त होगी। धार्मिक सम्प्रदायों अपनी संस्थाएँ बनाने, धार्मिक प्रचार करने, और चल और अचल सम्पत्ति रखने को पूर्ण अधिकार होगा। परन्तु, राज्य की नैतिकता कायम रखने के लिये किसी भी व्यक्ति को धर्म के नाम पर अनैतिक व्यवहार करने की आज्ञा नहीं दी जायगी। और न व्यक्तियों को ऐसे कर देने के लिये वाध्य किया जायगा जिसकी आमदनी किसी धर्म या सम्प्रदाय विशेष की उन्नति में खर्च की जाय। सरकार द्वारा चलाई हुई शिक्षा संस्थाओं में भारत सरकार की धर्म निर्पेक्षता (लौकिकता) के कारण, धार्मिक शिक्षा देने की मनाही की गई है। सिखों को कृपाण बाँधने तथा ले जाने का अधिकार दिया गया है।

सांस्कृतिक तथा शिक्षा सम्बन्धी अधिकार

धार्मिक अधिकार केवल बहुसंख्यक जाति को ही प्राप्त नहीं होंगे। संविधान में कहा गया है कि अल्पसंख्यक जातियाँ अपने धर्म, संस्कृति, भाषा और लिपि की रक्षा कर सकेंगी। वह अपनी इच्छानुसार शिक्षा संस्थाएँ चला सकेंगी और सरकार ऐसी संस्थाओं को आर्थिक सहायता देने में किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं बरतेगी। सरकार द्वारा संचालित शिक्षा संस्थाओं में हर धर्म, जाति व नस्ल के बच्चे बिना किसी रोक-टोक के शिक्षा प्राप्त कर सकेंगे।

सम्पत्ति अधिकार

सम्पत्ति प्राप्त करने, रखने तथा उसका क्रय-विक्रय करने का अधिकार भी नये संविधान में प्रत्येक व्यक्ति को दिया गया है। विधान में कहा गया है कि किसी भी व्यक्ति को, विधि से प्राप्त अधिकार बिना, उसकी सम्पत्ति से वंचित नहीं किया जायगा। सरकार किसी चल या अचल सम्पत्ति पर केवल उस समय अधिकार कर सकेगी जब उसे प्राप्त करने के लिये उचित मुआवजा दे दिया जाय। मुआवजा उचित है या नहीं इसका निर्णय अदालतें कर सकेंगी, परन्तु उत्तर प्रदेश, बिहार और मद्रास के जमींदारी उन्मूलन कानूनों की वैधानिकता के सम्बन्ध में कहीं अड़चन न पड़े, इसलिये संविधान में

कहा गया है कि इन विशेष कानूनों के क्षेत्र में अदालतों को किसी प्रकार का दखल नहीं होगा। ऐसा इसलिये किया गया है जिससे उन प्रान्तों में जहाँ जमींदारी उन्मूलन कानून पास हो चुके हैं या विधान सभाओं के विचाराधीन हैं, मुकदमों द्वारा उन कानूनों को कार्यान्वित करना असम्भव न बना दिया जाय।

संवैधानिक प्रतिकार सम्बन्धी अधिकार

अधिकारों का उस समय तक कोई मूल्य नहीं होता जब तक उनको लागू करने तथा उनकी रक्षा करने के लिये संवैधानिक उपाय न हों। हमारे नये संविधान में इसलिये प्रत्येक नागरिक को यह अधिकार दिया गया है कि वह अपने मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिये देश की सर्वोच्च न्याय-अदालत में मामला पेश कर सकेगा। इस अदालत को यह भी अधिकार दिया गया है कि वह नागरिकों के अधिकारों की रक्षा के लिये "हेबियस कारपस" तथा "मैन्डेमस" इत्यादि प्रयोगों को काम में ला सकेगी। आज-कल सुप्रीम कोर्ट में अनेक ऐसे मुकदमें विचाराधीन हैं जिनमें बहुत से नागरिकों ने अपने मूल अधिकारों की रक्षा के सम्बन्ध में उस अदालत में प्रार्थना-पत्र दिये हुये हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारे नये संविधान में नागरिकों को वह सभी सामाजिक, वैयक्तिक, तथा सांस्कृतिक तथा धार्मिक अधिकार प्रदान कर दिये गये हैं जिनके द्वारा ही कोई मनुष्य अपने जीवन में उन्नति कर सकता है।

नागरिकों के मौलिक अधिकार जो न्यायालयों द्वारा रक्षित नहीं किये जा सकते

ऊपर, नागरिकों के जिन मौलिक अधिकारों की हमने चर्चा की है उनको अदालत द्वारा मनवाया जा सकता है। परन्तु अब हम व्यक्तियों के कुछ ऐसे अधिकारों का वर्णन करेंगे जो अदालत द्वारा तो नहीं मनवाये जा सकते; किन्तु जो राज्य की नींव हैं और जिनके अनुसार राज्य का कार्य चलना चाहिए। नागरिकों के इन अधिकारों की चर्चा संविधान के उन नियामक सिद्धान्तों में की गई हैं जिनका वर्णन संविधान की ३६ से लेकर ५१वीं धारा में है। आयरलैण्ड को छोड़ कर संसार के किसी और देश में इस प्रकार के

सिद्धान्तों की घोषणा नहीं की गई है। इस प्रकार यह सिद्धान्त हमारे नये संविधान की बहुत सुन्दर विशेषता है। बहुत से लोग कहते हैं कि ऐसे सिद्धान्तों का वर्णन करने से क्या लाभ जिनका पालन करने के लिये सरकार बाध्य नहीं। इस आक्षेप का उत्तर यही है कि नियामक सिद्धान्त राज्य की कार्यकारिणी तथा विधान-मंडल के नाम संविधान सभा का एक प्रकार का आदेश है कि वह अपने अधिकारों तथा शक्तियों का इस प्रकार प्रयोग करें कि नागरिकों के इन सिद्धान्तों में वर्णित अधिकारों की रक्षा हो सके। यह ऐसे नियम हैं जिन पर चलना संघ सरकार तथा राज्यों की सरकारों को अनिवार्य होगा। इन पर चल कर ही हमारे देश में एक ऐसे आर्थिक तथा राजनीतिक लोकतंत्र की स्थापना हो सकेगी जिसके बिना स्वतन्त्रता प्राप्ति व्यर्थ है और साधारण मनुष्य के लिये स्वाधीनता का कोई अर्थ नहीं होता।

राज्य के नियामक सिद्धान्त (Directive Principles of State Activity)

राज्य के नियामक सिद्धान्त इस प्रकार हैं :—

(१) राज्य ऐसी व्यवस्था करेगा जिसमें प्रत्येक नर और नारी को समान रूप से जीविका का साधन प्राप्त हो।

(२) राज्य सम्पत्ति का स्वामित्व व नियंत्रण इस प्रकार करेगा जिससे सामूहिक हित में अधिक से अधिक वृद्धि हो।

(३) राज्य ऐसी व्यवस्था करेगा जिससे धन व उत्पादन के साधन थोड़े से आदमियों के हाथ में इकट्ठे न हों।

(४) सब व्यक्तियों को समान कार्य के लिये समान वेतन मिल सके।

(५) बालक व वयस्क मजदूरों की शोषण से रक्षा हो सके।

(६) ग्राम पंचायतों का संगठन हो तथा उन्हें वह सभी अधिकार प्रदान किये जायँ जो पहिले कभी उन्हें प्राप्त थे।

(७) राज्य की ओर से यथाशक्ति बेकारी, बुढ़ापा, बीमारी तथा अभाव की दशा में सार्वजनिक सहायता देने का प्रबन्ध हो।

(८) प्रत्येक व्यक्ति को इतनी मजदूरी मिले कि उसकी जीविका चल सके।

(९) घरेलू उद्योगधंधों को प्रोत्साहन दिया जाय।

(१०) १० वर्ष के भीतर १४ साल की आयु तक के बच्चों के लिये निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का प्रबन्ध हो।

(११) जनता के जीवन-स्तर को ऊँचा करने के लिये पौष्टिक भोजन का प्रबन्ध और स्वास्थ्य-सुधार के नियमों का पालन किया जाय।

(१२) कृषि और पशु-पालन का आधुनिक ढङ्ग से सङ्गठन हो, विशेषकर गायों, बछड़ों और दूध देने वाले पशुओं की रक्षा की जाय।

(१३) कलात्मक और ऐतिहासिक इमारतों की रक्षा की जाय।

(१४) कार्यकारिणी और न्याय-सम्बन्धी विभाग को अलग-अलग किया जाय।

(१५) विश्व शान्ति के लिये अन्तर्राष्ट्रीय कानून का सम्मान, परस्पर सहयोग तथा झगड़ों का पञ्चों द्वारा निर्णय कराया जाय।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नियामक सिद्धांतों में उन सभी आदर्शों को प्रतिपादित करने का प्रयत्न किया गया है जो किसी भी राष्ट्र की जनता को प्रिय हो सकते हैं तथा जिनके पूरा होने पर समाज में स्वर्गीय आनन्द की स्थापना हो सकती है।

जनता का कर्त्तव्य

संविधान में मौलिक अधिकारों व नियामक सिद्धांतों के उल्लेख-मात्र से जनता का कुछ अधिक भला नहीं होता। उनसे केवल उस दशा में लाभ हो सकता है जब वह कार्यान्वित किये जायँ। ऐसा केवल उस दशा में हो सकता है जब जनता अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो। संस्कृत में एक कहावत है "राष्ट्रे जाग्रयाम वयम्" अर्थात् हम राष्ट्र में जागते रहें। इस एक सूत्र के अन्तर्गत जनता का अपने संविधान के प्रति सारा कर्त्तव्य निहित है। स्वतन्त्र कौमें केवल उस दशा में उन्नति के पथ पर अग्रसर होती हैं जब वह जागरण और सुचेतना द्वारा अपनी स्वाधीनता का मूल्य चुकायें। यदि आज भारतवासियों ने यह मूल्य चुकाने में आनाकानी की तो हमारे सभी मौलिक अधिकार नष्ट हो जायेंगे।

केन्द्रीय संघ शासन की व्यवस्था

निम्नतालिका में केन्द्रीय संघ शासन का सङ्गठन समझाने का प्रयत्न किया गया है:--
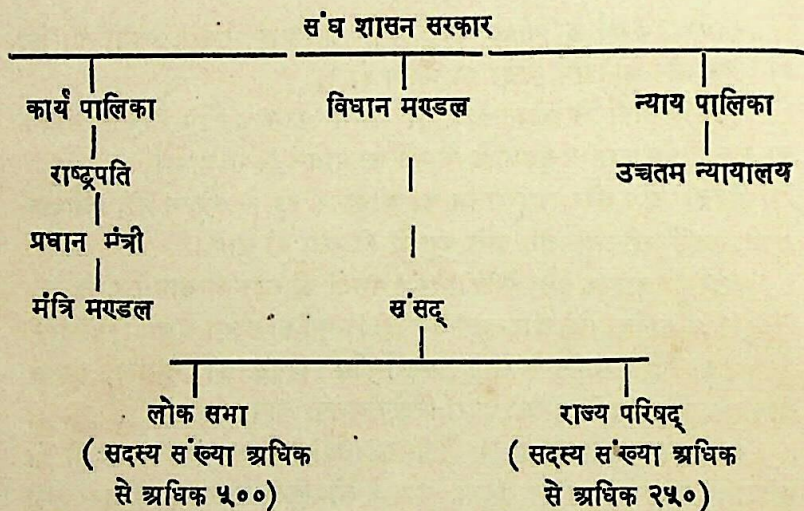
सरकार के इन विभिन्न अंगों का विस्तृत वर्णन अब हम आगे के अध्यायों में करेंगे।

योग्यता प्रश्न

(१) "भारतीय संविधान संघात्मक है"। "भारतीय संविधान एकात्मक है"। उपरोक्त दोनों मतों का विश्लेषण कीजिये और बताइये कि इनमें कहाँ तक यथार्थता है ?

(२) "भारतीय संघ संविधान संसार में अनूठा है"। इस कथन में क्या सच्चाई है ?

(३) नये संविधान में संघ सरकार को अधिक शक्ति क्यों प्रदान की गई है ? क्या भारत के लिए एकात्मक विधान अच्छा रहता ?

(४) हमारे नये संविधान में नागरिकता के अधिकार किन व्यक्तियों को प्रदान किए गये हैं। शरणार्थी भाइयों के लिए नागरिकता के अधिकार कैसे प्रदान किए जायँगे।

(५) मूल अधिकारों का नये संविधान के अनुसार क्या अर्थ है ? भारतीय नागरिकों के क्या मूल अधिकार हैं ? (यू० पी० १९५१)

(६) राज्य के नियामक सिद्धान्तों का क्या अर्थ है ? उनका क्या उद्देश्य है ?

अध्याय ५

संघ कार्यपालिका

संघ कार्यपालिका का स्वरूप

हमारे नये संविधान के अंतर्गत भारत में एक मंत्रिमंडलात्मक शासन की व्यवस्था की गई है। इस व्यवस्था के अंतर्गत देश की कार्यकारिणी व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप से अपने सारे कृत्यों, फैसलों तथा कार्यों के लिए विधान-मण्डल के प्रति उत्तरदायी होती है। विधान मण्डल जब चाहे कार्यकारिणी को उसके द्वारा प्रस्तावित कानूनों को रद्द करके या उसके विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास करके या बजट को अस्वीकार करके उसके पद से अलग कर सकता है। आम चुनावों के समय जनता को यह अवसर मिलता है कि वह विधान मण्डल में जिस विचारधारा के भी चाहे सदस्यों को चुन कर भेजे। जिस राजनीतिक दल के सदस्य विधान सभा में बहुसंख्या में निर्वाचित होते हैं उसके नेता को ही मंत्रिमंडल बनाने का सुअवसर दिया जाता है। इस प्रकार मंत्रिमंडलात्मक व्यवस्था के अंतर्गत राज्य की अन्तिम सत्ता निर्वाचकों के हाथ में रहती है।

शासन की यह पद्धति अमरीका की अध्यक्षात्मक प्रणाली से बिल्कुल भिन्न है। वहाँ कार्यकारिणी का अध्यक्ष राष्ट्रपति विधान सभा के बहुमत दल का नेता नहीं होता। उसका अलग जनता द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से चुनाव किया जाता है। वह कार्यपालिका का वास्तविक अध्यक्ष होता है। उसे अपने मंत्रियों को स्वयं चुनने तथा अलग करने का अधिकार होता है। वह विधान सभा के प्रति उत्तरदायी नहीं होता न ही वह विधान सभा की बैठकों में भाग लेता है। उसके कार्यकाल के अन्त होने तक कोई शक्ति उसे उसके पद से नहीं हटा सकती। चार वर्ष के लिये वह राष्ट्र का सर्वेसर्वा होता है।

अमरीका और भारत के राष्ट्रपति में अन्तर—हमारे संविधान में राष्ट्रपति कार्यकारिणी का अध्यक्ष अवश्य है परंतु अमरीका के राष्ट्रपति की भाँति उसे अधिकार प्राप्त नहीं हैं। वह इंगलैंड के सम्राट की भाँति राज्य का नाममात्र अध्यक्ष है। वह राष्ट्र का प्रतिनिधित्व तो करता है परंतु राष्ट्र का शासन नहीं करता। वह इंगलैंड के सम्राट की भाँति प्रत्येक कार्य प्रधान मंत्री की सलाह से ही करता है। कहने को राष्ट्र की सारी शक्ति उसके हाथ में निहित है; राज्य के सारे काम उसके नाम पर किए जाते हैं, परंतु वास्तव में देश का असली शासक प्रधान मंत्री है। बाहर से देखने पर हमारे राष्ट्रपति के भी वही ठाट-बाट हैं जो इंगलैंड के सम्राट के। रहने के लिए विशाल महल, सवारी के लिये शाही गाड़ियाँ, रक्षा के लिए सेना और अंग-रक्षक, तोपों की सलामी, सुनहरी पेटियों वाले चपरासी और प्यादे, दावतें और स्वागत समारोह और सभी कुछ; परन्तु वास्तव में उसके हाथों में शासन की कोई विशेष शक्ति नहीं। यह सच है कि संविधान में राष्ट्रपति के हाथ में, विशेषकर सङ्कटकालीन स्थिति में कार्य करने के लिए बहुत से महत्त्वपूर्ण अधिकार सौंपे गये हैं और कहीं पर यह नहीं कहा गया है कि वह अपने मंत्रियों की आज्ञा मानने के लिये बाध्य होंगे, परन्तु आशा है कि इस दिशा में वही सब रीति-रिवाज चालू हो जायँगे जो इंगलैंड में लागू हैं और जिनके कारण ब्रिटिश सम्राट मंत्रिमण्डल के हाथ में एक कठपुतली के समान कार्य करता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि नामों में समानता होने पर भी भारत और अमरीका के राष्ट्रपति के अधिकार एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं। (१) एक कार्यकारिणी का सर्वेसर्वा है, दूसरा उसका नाममात्र का अध्यक्ष। (२) एक सारे मन्त्रियों को स्वयं चुनता है, तथा उन्हें जब चाहे अलग कर सकता है, दूसरा केवल प्रधान मन्त्री का चुनाव करता है और वह भी एक विशेष पद्धति के अनुसार लोक सदन में बहुमत दल के नेता को। (३) एक बड़े-बड़े सरकारी कर्मचारियों की नियुक्ति स्वयं करता है, दूसरा ऐसा प्रधान मन्त्री की सलाह से करता है।

भारत में मन्त्रिमंडलात्मक शासन पद्धति चुने जाने के कारण—यहाँ प्रश्न यह उठता है कि भारत ने मन्त्रिमण्डलात्मक शासन पद्धति का क्यों

अवलम्बन किया और अध्यक्षात्मक सरकार की स्थापना क्यों नहीं की ? इसके निम्न कारण हैं :—सर्व प्रथम, इस पद्धति के आधीन पिछले १२ वर्षों से हमारे प्रांतों की सरकारें व्यवस्थित हो रही थीं। केन्द्रीय शासन में भी अंतरिम सरकार की स्थापना के पश्चात् से यही पद्धति लागू थी। इस प्रकार भारतवासियों को इस व्यवस्था का समुचित अनुभव प्राप्त था। इस अनुभव ने उन्हें बताया कि मन्त्रिमण्डलात्मक सरकार के आधीन विधान मण्डल तथा कार्यकारिणी के बीच कार्य बहुत सुगमता तथा सुन्दरता से चलता है। मन्त्री उस नीति को आसानी से कार्यान्वित कर सकते हैं जिसके आधार पर वे विधान सभा में चुने जाते हैं। वह विधान मण्डल द्वारा उन सभी कानूनों को आसानी से पास करा सकते हैं जिन्हें वह शासन कार्य चलाने के लिए उचित समझते हैं।

अन्त में यह शासन प्रणाली में ही नहीं संसार के सभी देशों में लोकप्रिय बन गई है। कारण इस व्यवस्था के आधीन कार्यकारिणी और विधान मंडल में राजनीतिक अवरोध उत्पन्न नहीं होते। इसमें परिस्थिति के अनुसार बदलने और कार्य करने की शक्ति होती है। यह प्रणाली अधिक जनतंत्रात्मक भी मानी जाती है।

इन सभी लाभों को देखकर हमारे विधान निर्माताओं ने खूब सोच विचार करने के पश्चात् मंत्रिमंडलात्मक शासन प्रणाली का ही अवलंबन किया।

१. राष्ट्रपति

जैसा पहले बताया जा चुका है हमारे देश की कार्यकारिणी का अध्यक्ष एक राष्ट्रपति है। आजकल इस पद पर डा० राजेन्द्र प्रसाद सुशोभित हैं। संविधान में कहा गया था कि जब तक संविधान लागू होने के पश्चात् नये चुनाव न हो जायँ, संविधान सभा को स्वयं राष्ट्रपति निर्वाचित करने का अधिकार होगा। इस धारा के अंतर्गत संविधान सभा की एक विशेष बैठक जनवरी २५, १९५० को की गई। इस बैठक में सर्वसम्मति से देशरत्न राजेन्द्र बाबू को राष्ट्रपति चुन लिया गया। अगले दिन गवर्नमेंट हाउस के दरबार हाल में एक विशेष समारोह के बीच उन्होंने अपने पद की शपथ ग्रहण कर ली।

राष्ट्रपति का चुनाव

हमारे वर्तमान राष्ट्रपति के पद की कोई निश्चित अवधि नहीं है। वह केवल उस समय तक ही अपने पद पर आसीन रहेंगे जब तक साधारण निर्वाचन के पश्चात् नये राष्ट्रपति का चुनाव नहीं हो जाता। इस चुनाव में दूसरे व्यक्तियों की भाँति वर्तमान राष्ट्रपति को भी उम्मीदवार बनने का अधिकार प्राप्त होगा। संविधान में राष्ट्रपति के जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से चुने जाने की व्यवस्था नहीं की गई है। कारण, वह केवल कार्यकारिणी के नाममात्र के अध्यक्ष हैं। उनके हाथ में शासन की वास्तविक शक्ति नहीं। इसलिये १८ करोड़ के लगभग मतदाताओं की विशाल संख्या से उनका प्रत्यक्ष निर्वाचन आवश्यक नहीं समझा गया। संविधान में कहा गया है कि राष्ट्रपति का निर्वाचन एक निर्वाचक मंडल द्वारा किया जायगा जिसके सदस्य सब राज्यों के दोनों भवनों के निर्वाचित सदस्य तथा केन्द्रीय संसद् के चुने हुये सदस्य होंगे। चुनाव एकहरे संक्राम्य मत (Single transferable vote) के द्वारा अनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली (proportional representation) के द्वारा किया जायगा जिससे कोई ऐसा व्यक्ति राष्ट्रपति न चुना जा सके जिसे मतदाताओं की बहुसंख्या का विश्वास प्राप्त न हो। चुनाव में प्रत्येक सदस्य को जितने वोट देने का अधिकार होगा उसके निर्णय के लिए एक विशेष नियम बनाया गया है। इस नियम में कहा गया है कि विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधियों को जहाँ तक सम्भव होगा बराबर के मत देने का अधिकार दिया जायगा और समस्त राज्यों के प्रतिनिधियों को उतने ही मत दिये जायँगे जितने संसद् के दोनों भवनों के सदस्यों को मिला कर। ऐसा करने के लिये प्रत्येक मतदाता को जितने मत देने का अधिकार होगा उसकी संख्या नीचे लिखे प्रकार से निर्धारित की जायगी :—

यू० पी० की आबादी ६,३२ लाख है। उसकी विधान सभा के निर्वाचित कुल सदस्यों की संख्या ४३० है। अब इस बात का पता लगाने के लिए राष्ट्रपति के निर्वाचन में प्रत्येक यू० पी० का सदस्य कितने वोट दे सकेगा, हमें आबादी की कुल संख्या अर्थात् ६,३२,००,००० को ४३० से भाग देना होगा और फिर भजनफल को १,००० से। इस प्रकार भजनफल

६,३२,००,०००÷४३०×१०००=अर्थात् १४७ राय। प्रत्येक सदस्य को यही १४७ राय देने का अधिकार होगा। दूसरे राज्यों के सदस्यों को भी मत देने का अधिकार इसी प्रकार निश्चित किया जायगा। इस प्रणाली से यह लाभ है कि सभी राज्यों के प्रतिनिधि राष्ट्रपति के चुनाव में बराबर भाग ले सकेंगे। यदि सब राज्यों की विधान सभाओं के सदस्यों की संख्या समान होती तो इस विभिन्न प्रणाली की आवश्यकता न पड़ती।

संसद् के दोनों भवनों के निर्वाचित सदस्यों के विषय में नियम यह है कि उसका कोई सदस्य उतने वोट दे सकेगा जितने, अन्तर्गत राज्यों के विधान मंडल के सब निर्वाचित सदस्यों द्वारा दिये जाने वाले वोटों को, पार्लियामेंट के दोनों भवनों के निर्वाचित सदस्यों की कुल संख्या से भाग देने से प्राप्त होंगे।

योग्यता—राष्ट्रपति के पद के लिये केवल वही लोग खड़े हो सकेंगे जो (१) भारत के नागरिक हों (२) जिनकी आयु ३५ वर्ष से अधिक हो तथा जो (३) लोक सभा में चुने जाने की योग्यता रखते हों। यदि कोई व्यक्ति भारत सरकार या किसी राज्य की सरकार के आधीन किसी लाभकारी पद पर आसीन है तो वह निर्वाचन के लिये योग्य नहीं समझा जायगा। परन्तु संघ सरकार या किसी राज्य का मंत्री होना या गवर्नर होना या किसी विधान सभा या परिषद् का सभापति अथवा अध्यक्ष होना लाभकारी पद नहीं समझा जायगा—ऐसे सब लोग चुनाव में भाग ले सकेंगे।

पद का कार्यकाल—राष्ट्रपति के पद का कार्यकाल ५ वर्ष होगा बशर्ते कि वह इससे पहले ही त्यागपत्र न दे दे या सार्वजनिक दोषारोपण द्वारा अपने पद से न हटा दिया जाय। जब तक नया पदाधिकारी न चुन लिया जायगा पहला राष्ट्रपति ही कार्य काल की समाप्ति पर भी अपने पद पर काम करता रहेगा। राष्ट्रपति को अधिकार होगा कि वह अपने पद से त्यागपत्र दे दे। ऐसा त्यागपत्र उपराष्ट्रपति को संबोधित करके देना होगा जो इसके बाद लोक सभा के सभापति के सूचनार्थ पेश कर दिया जायगा। एक बार चुन लिये जाने के पश्चात् भी वही व्यक्ति दोबारा और तिबारा उसी पद के लिये खड़ा हो सकेगा। संविधान में इस विषय में कोई रोक नहीं लगाई गई है।

सार्वजनिक दोषारोपण—राष्ट्रपति को उसके पद से हटाने के संबन्ध में

विधान में इस बात का प्रबन्ध किया गया है कि यदि कोई राष्ट्रपति संविधान को भंग करे तो संसद् का कोई एक भवन दो-तिहाई बहुमत से दूसरे भवन से यह प्रार्थना कर सकेगा कि वह राष्ट्रपति के विरुद्ध लगाये गये अभियोगों की जाँच-पड़ताल करे। ऐसा प्रस्ताव पेश करने के लिये किसी भवन के कुल सदस्यों की एक-चौथाई के हस्ताक्षर तथा १४ दिन की सूचना आवश्यक है। अभियोगों की जाँच-पड़ताल करने वाले भवन में राष्ट्रपति को अधिकार होगा कि उस जाँच में स्वयं उपस्थित होकर या प्रतिनिधि के द्वारा भाग ले सके। यदि पूरी जाँच के पश्चात् दूसरा भवन दो-तिहाई बहुसंख्या से अभियोगों का समर्थन कर दे तो राष्ट्रपति को उसके पद से हटा दिया जायगा।

प्रश्न उठता है कि जब नये विधान में राष्ट्रपति को कोई विशेष अधिकार नहीं दिये गये है तो इस दोषारोपण की व्यवस्था किस लिये की गई है। इसका उत्तर यह हैं कि जैसे पहले बताया गया है, संविधान में राष्ट्रपति के अधिकारों पर कोई वैधानिक रोक नहीं लगाई गई है। केवल ७४वीं धारा में इतना कहा गया है कि राष्ट्रपति की सलाह तथा सहायता के लिये प्रधान मंत्री के नेतृत्व में एक मंत्रिमंडल होगा। यह कहीं नहीं कहा गया कि इस मंत्रिमंडल की बात मानने के लिये राष्ट्रपति बाध्य होंगे। विधान निर्माताओं का आशय था कि इस दशा में कानून से नहीं, रीति-रिवाजों (conventions) से काम लिया जाय, परन्तु साथ ही उन्हें यह डर था कि यदि राष्ट्रपति रीति-रिवाजों को नहीं मानें और मंत्रियों की सलाह से काम नहीं करें, तो क्या होगा? ऐसी परिस्थिति के लिये ही संविधान की ५६वीं व ६१वीं धारा में राष्ट्रपति पर संविधान तोड़ने का दोष लगाकर, उन्हें उनके पद से अलग करने की व्यवस्था की गई है। मंत्रियों की सलाह न मानना अथवा देशद्रोह, भ्रष्टाचार या घूसखोरी का काम करना, संविधान का तोड़ना समझा जायगा।

रिक्त स्थान की पूर्ति—राष्ट्रपति के कार्यकाल की समाप्ति से पहले ही संविधान में कहा गया है कि नया निर्वाचन हो जाना चाहिये, परन्तु यदि मृत्यु, त्यागपत्र अथवा सार्वजनिक दोषारोपण के कारण नये चुनाव से पहिले ही राष्ट्रपति का स्थान खाली हो जाय तो ऐसी दशा में संविधान में कहा गया है कि छै महीने के अन्दर-अन्दर नया चुनाव हो जाना चाहिए। नये

राष्ट्रपति का चुनाव चाहे जिस कारण से हो उसकी अवधि ५ वर्ष की ही निश्चित की गई है।

वेतन—संविधान में कहा गया है कि राष्ट्रपति को १०,००० रु० मासिक वेतन, कई प्रकार का भत्ता तथा रहने के लिये भवन तथा दूसरी सुविधाएँ दी जायेंगी। किसी राष्ट्रपति के कार्यकाल में उसका वेतन नहीं घटाया जा सकेगा। परन्तु, हमारे वर्तमान राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद ने देश के आर्थिक संकट को देखकर अपने वेतन में स्वेच्छा से, १५% की कमी स्वीकार कर ली है।

राष्ट्रपति के अधिकार

संविधान में कहा गया है कि कार्यकारिणी का प्रत्येक कार्य राष्ट्रपति के नाम पर किया जायगा। वह सेना के प्रधान सेनापति तथा देश की कार्यपालिका के अध्यक्ष होंगे। वह राष्ट्र के प्रतीक तथा जनता के सबसे बड़े प्रतिनिधि हैं। इङ्गलैंड के सम्राट की भाँति वह कानून से ऊपर हैं। उन पर किसी न्यायालय में मुकदमा नहीं चलाया जा सकता। सार्वजनिक दोषारोपण के अतिरिक्त और किसी उपाय से पाँच वर्ष तक उन्हें उनके पद से नहीं हटाया जा सकता। उनकी प्रतिष्ठा, मान और मर्यादा कायम रखने के लिए उन्हें हर प्रकार की सुविधाएँ दी जाती हैं—रहने के लिए विशाल महल, सवारी के लिए राल्स रायस गाड़ियाँ, निजी हवाई जहाज, स्पैशल ट्रेन, सेवा के लिये अङ्ग रक्षक; घर का प्रबंध करने के लिए अनेक अफसर, प्राइवेट सेक्रेटरी, कन्ट्रोलर आफ हाउसहोल्ड, प्रेस अटैशी इत्यादि; दावतें देने के लिए विशेष निधि, मेहमानों के लिये विशाल अतिथि गृह; सिनेमा देखने के लिए अपना निजी थियेटर, आमोद-प्रमोद के लिए आखेट केन्द्र और बढ़िया बाग बगीचे। कहा जाता है कि राष्ट्रपति भवन में ३०० से अधिक कमरे हैं। उनकी रियासत में ४००० से अधिक आदमी बसते हैं। राष्ट्रपति भवन का अपना निजी पावर हाउस, टेलीफोन ऐक्सचेंज, डाक व तारघर, म्यूनिसिपल प्रबंध, पुलिस व सेना है। राष्ट्रपति की संपदा पर भारत सरकार को प्रतिवर्ष १४ लाख रुपये से अधिक खर्च करने पड़ते हैं। संक्षेप में भारत के राष्ट्रपति के वही ठाट-बाट हैं जो इंगलैंड में सम्राट के और अमरीका में प्रधान के। दूसरे देशों के राजदूत उन्हीं को अपने प्रमाण-पत्र पेश करते हैं तथा वही दूसरे

देशों में अपने राजदूतों की नियुक्ति की स्वीकृति देते हैं। संक्षेप में हम राष्ट्रपति के अधिकारों को पाँच भागों में विभक्त कर सकते हैं--(१) शासन सम्बन्धी (Administrative) अधिकार, (२) विधान सम्बन्धी (Legislative) अधिकार, (३) न्याय सम्बन्धी (Judicial) अधिकार, (४) वित्तीय (Financial) अधिकार और सङ्कट कालीन (Emergency) अधिकार।

शासन सम्बन्धी अधिकार

जैसा पहिले बतलाया जा चुका है, राष्ट्रपति कार्यपालिका के अध्यक्ष हैं। वह स्वयं प्रधान मंत्री का चुनाव करते हैं। उन्हीं के सम्मुख सब मंत्रियों को अपने पद की शपथ ग्रहण करनी पड़ती है। बड़े-बड़े सरकारी कर्मचारी जैसे संघीय एवं राज्यों की उच्चतम न्यायालयों के सदस्य, राज्यों के राज्यपाल, संघीय पबलिक सर्विस कमीशन के सदस्य, चुनाव कमिश्नर, आडीटर जनरल, राजस्व कमीशन के सदस्य अटारनी जनरल इत्यादि की नियुक्ति उन्हीं के द्वारा की जाती है। देश में संसद् द्वारा स्वीकृत, कोई भी कानून उस समय तक लागू नहीं किया जा सकता जब तक वह उस पर हस्ताक्षर न कर दें। सब मंत्रियों को अपने विभाग के कार्य से उन्हें अवगत कराना पड़ता है। सरकार का कार्य कुशलता-पूर्वक चले, इसके लिए उन्हीं को नियम बनाने पड़ते हैं। दूसरे देशों के विरुद्ध युद्ध व सन्धि की घोषणा भी उन्हीं के द्वारा की जाती है। कबायली इलाकों तथा अंडेमान निकोबार के शासन प्रबन्ध के लिए भी उन्हीं को विशेष प्रबंध करना पड़ता है।

विधान संबन्धी अधिकार

नव संविधान राष्ट्रपति को विधान मंडल का एक आवश्यक और अनिवार्य अंग मानता है। कोई भी 'बिल' उस समय तक कानून नहीं बन सकता जब तक राष्ट्रपति उस पर हस्ताक्षर न कर दें। वह विधान सभा द्वारा पास बिलों को दोबारा विचार के लिए लौटा सकते हैं। विधान सभा की बैठक बुलाने, उसे स्थगित करने तथा भंग करने का अधिकार भी उन्हीं को प्राप्त है। वह संसद् की सभाओं में भाषण दे सकते हैं तथा लिख कर संदेश भेज सकते हैं। प्रति वर्ष संसद् के प्रथम अधिवेशन का उन्हीं को उद्घाटन करना पड़ता है जिसमें वह सरकार की नीति का उल्लेख करते हैं। बहुत से विषयों पर

नून उस समय तक नहीं बन सकता जब तक राष्ट्रपति से उनके विषय पूर्व स्वीकृति न ले ली जाय। संसद् के विश्रान्ति काल में उन्हें अल्पकालीन नून (Ordinances) पास करने का भी अधिकार है यद्यपि ऐसे कानूनों अवधि संसद् के अधिवेशन आरंभ होने के ६ सप्ताह तक ही रहती है। ज्य परिषद् में १२ सदस्यों को मनोनीत करने का भी उन्हें अधिकार दिया गा है।

याय सम्बन्धी अधिकार

न्याय के संबन्ध में भी राष्ट्रपति को विशेष अधिकार प्रदान किये । वही देश की हाईकोर्ट तथा सुप्रीम कोर्ट के जजों तथा चीफ जस्टिस की नेयुक्ति करते हैं। इसके अतिरिक्त न्यायालयों द्वारा सजा पाये हुए अपराधियों की सजा कम करना या उन्हें क्षमादान देना भी उन्हीं का काम है। वह सुप्रीम कोर्ट से किन्हीं महत्वपूर्ण संवैधानिक या सार्वजनिक मामलों पर राय भी ले सकते हैं।

वित्तीय अधिकार

अर्थ संबन्धी विषयों में भी राष्ट्रपति को अनेक अधिकार प्रदान किये गये हैं। उनकी स्वीकृति के बिना खर्च के संबंध में कोई भी बिल विधान सभा में प्रस्तुत नहीं हो सकता। वार्षिक बजट उन्हीं के नाम पर संसद् के सम्मुख पेश किया जाता है। उन्हीं के द्वारा, कुछ दिन हुए, आर्थिक कमीशन की नियुक्ति की गई थीं, जिसके अध्यक्ष श्री के० सी० वियोगी हैं। विभिन्न राज्यों के बीच आयकर (Income tax) एवं जूट-कर का बँटवारा भी उन्हीं की स्वीकृति से किया जाता है।

राष्ट्रपति के अधिकारों पर रोक

परंतु यहाँ यह समझा देना आवश्यक है कि राष्ट्रपति भारतीय शासन के विधाननिष्ट अध्यक्ष (Constitutional Head) हैं।

यद्यपि जैसा पहिले बताया गया है, संविधान मे ऐसा कोई उल्लेख नहीं है कि राष्ट्रपति अपने मंत्रियों की सलाह मानने के लिए बाध्य होंगे, परन्तु आशा की जाती है कि इंगलैंड के शासन की भाँति, इस विषय में रीति-रिवाजों (Conventions) से काम लिया जायगा। संविधान में एक विशिष्ट

धारा पास करके राष्ट्रपति की कार्य करने की स्वतंत्रता का अपहरण नहीं किया गया है, परंतु उनसे आशा की गई है कि प्रत्येक साधारण अवस्था में वह अपने मंत्रियों की सलाह से ही कार्य करेंगे। हाँ इतना अवश्य है कि सङ्कटकालीन अवस्था में उन्हें अपने विवेक से कार्य करने की अधिक सुविधा प्राप्त होगी। कारण नव संविधान में ऐसी दशा में उनके हाथ में अनेक अधिकार केन्द्रित कर दिये गये हैं। साधारण दशाओं में किसी राष्ट्रपति को देश के शासन प्रबंध में हस्तक्षेप करने का कितना अधिकार है यह इस बात पर भी निर्भर होगा कि किस प्रकार का व्यक्ति उस पद पर आसीन है। यदि राष्ट्रपति जनता का प्रिय नेता हुआ और साथ ही अत्यन्त ही बुद्धिमान और अनुभवी तो कोई कारण नहीं कि वह देश के शासन प्रबंध पर अपने व्यक्तित्व की छाप न लगा सके। प्रधान मंत्री और राष्ट्रपति के बीच का सम्बंध उनके अपने व्यक्तित्व और लोकप्रियता पर निर्भर होगा। यदि प्रधान मंत्री दुर्बल और शक्तिहीन हुआ तो राष्ट्रपति को अपने अधिकार प्रयोग में लाने का अधिक अवसर मिलेगा। विपरीत अवस्था में राष्ट्रपति केवल शासन का नामधारी अध्यक्ष रहेगा।

नीचे हम राष्ट्रपति की सङ्कटकालीन शक्तियों का उल्लेख करते हैं:—

संकटकालीन अवस्था में राष्ट्रपति के अधिकार

जर्मनी के वाईमार संविधान की भाँति भारतीय संविधान में राष्ट्रपति को सङ्कटकालीन अवस्था में कार्य करने के लिए विशेष अधिकार प्रदान किए गये हैं। इन अधिकारों में से एक अधिकार का प्रयोग राष्ट्रपति पञ्जाब में कर भी चुके हैं। उस प्रांत में कांग्रेस पार्लियामेंटरी बोर्ड के आदेश के आधीन भार्गव मन्त्रि-मण्डल ने १८ जून सन् १६५१ को त्याग पत्र दे दिया। इसके पश्चात् राष्ट्रपति ने संविधान की ३५६वीं धारा के आधीन एक विशेष विज्ञप्ति निकाल कर २० जून को इस बात की घोषणा कर दी कि पञ्जाब में संवैधानिक सङ्कट उत्पन्न हो गया है और भविष्य में उस राज्य का शासन वह स्वयं राज्यपाल की सहायता से चलाएँगे। आजकल इस घोषणा के आधीन पंजाब राज्य का शासन उसी प्रकार चलाया जाता है जैसे वह केन्द्र के आधीन कोई चीफ कमिश्नर का राज्य हो।

राष्ट्रपति की सङ्कटकालीन शक्तियों को हम ३ भागों में विभक्त कर सकते हैं :—

(१) युद्ध, बाहरी आक्रमण अथवा आंतरिक उपद्रवों से उत्पन्न सङ्कट-कालीन स्थिति,

(२) किसी राज्य में संवैधानिक संकट, तथा

(३) देशव्यापी आर्थिक संकट।

(१) युद्ध, वाह्य आक्रमण अथवा आंतरिक उपद्रवों से उत्पन्न संकटकालीन स्थिति—संविधान में कहा गया है कि यदि किसी समय राष्ट्रपति को उपरोक्त किन्हीं भी कारणों से यह संशय होगा कि सारे भारत या उसके किसी भाग की सुरक्षा संकट में है तो वह एक उद्घोषणा द्वारा यह कह सकेगा कि संघ सरकार द्वारा ही, संकटकालीन अवस्था में, सब राज्यों की सरकार चलाई जायगी और ऐसी घोषणा के पश्चात् संघ सरकार को अधिकार होगा कि वह राज्यों के लिये कानून बना सके, तथा राज्यों के सरकारी कर्मचारियों को आदेश दे सके कि वह संघ सरकार की आज्ञानुसार कार्य करें।

इस प्रकार की उद्घोषणा उस समय भी की जा सकती है जब युद्ध या बाहरी आक्रमण या आंतरिक अशांति अभी उत्पन्न नहीं हुई हो और उसके उत्पन्न होने की केवल संभावना हो। संविधान की ३५२ धारा के अन्तर्गत यह घोषणा, केवल दो महीने के लिये ही लागू रह सकती है, जब तक इससे पहिले उस घोषणा का समर्थन संसद के दोनों भवनों द्वारा न कर दिया जाय। संसद की स्वीकृति भी इस घोषणा के लिये एक समय में केवल ६ मास के लिये दी जा सकती है और किसी भी दशा में कुल मिला कर यह घोषणा ३ वर्ष से अधिक के लिये लागू नहीं की जा सकती।

जिस समय इस प्रकार की घोषणा लागू होगी तो राष्ट्रपति को यह भी अधिकार होगा कि वह कुछ समय अथवा पूरे संकटकालीन समय के लिये नागरिकों के मौलिक अधिकारों सम्बन्धी उस धारा को स्थगित कर दें, जिसके द्वारा उन्हें देश की सर्वोच्च अदालत में अपने अधिकारों की रक्षा के लिये प्रार्थना पत्र पेश करने का अधिकार प्राप्त है।

राष्ट्रपति को यह भी अधिकार दिया गया है कि ऐसे समय वह संविधान की उन २६८ से लगाकर २७६ धाराओं में भी संशोधन कर सकते हैं जिनके द्वारा राज्यों तथा संघ सरकार के बीच आर्थिक साधनों का विभाजन किया गया है।

(२) राज्यों में संवैधानिक संकट—युद्ध अथवा आंतरिक उपद्रवों की अवस्था के अतिरिक्त राष्ट्रपति को संविधान की ३५६वीं धारा के आधीन यह अधिकार दिया गया है कि यदि किसी समय उन्हें राज्यपाल या राज्यप्रमुख या और किसी और स्रोत से यह ज्ञात हो कि किसी राज्य का शासन संविधान की धाराओं के अनुसार नहीं चलाया जा रहा है तो वह एक घोषणा के द्वारा उस राज्य की सरकार के सब या जितने वह चाहें अधिकार अपने हाथ में ले सकते हैं और राज्यपाल या राजप्रमुख के कार्यों का भी स्वयं संचालन कर सकते हैं। ऐसी दशा में यह संघ संदद् को भी अधिकृत कर सकते हैं कि वह उस राज्य के विधान मंडल की ओर से कानून पास करे। हाई कोर्ट को छोड़कर, और किसी संस्था के अधिकार भी वह इसी धारा के आधीन, अपने हाथ में ले सकते हैं। इस घोषणा के पश्चात् संघ संसद् को यह अधिकार होता है कि वह किसी ऐसे अधिकारी को जिसे वह नियुक्त करे, उस राज्य की सरकार चलाने के लिये, जिसके सम्बन्ध में वैधानिक संकट की घोषणा की गई है, कानून बनाने अथवा उन पर कार्य करने की शक्ति प्रदान कर दे। राष्ट्रपति को इस स्थिति में यह भी अधिकार होता है कि वह राज्य के बजट से शासन का कार्य चलाने के लिये, स्वयं खर्चे की मंजूरी दे दे। जैसा पहिले बताया जा चुका है इस धारा के आधान संकट की घोषणा पञ्जाब राज्य में की जा चुकी है।

(३) देश व्यापी आर्थिक संकट—आगे चल कर संविधान की ३६०वीं धारा में राष्ट्रपति को अधिकार दिया गया गया है कि यदि किसी समय उन्हें ऐसा अनुभव हो कि देश में एक ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है जिससे भारत अथवा उसके किसी राज्य के क्षेत्र में भारी आर्थिक संकट उत्पन्न हो गया है, तो वह एक घोषणा द्वारा संविधान में दिये गये बहुत से आर्थिक अधिकार अपने हाथ में ले सकते हैं। ऐसी दशा में उन्हें यह भी अधिकार होता है कि वह

राज्यों तथा संघ के सरकारी नौकरों के वेतन में कमी कर सकें। सुप्रीम तथा हाई कोर्टों के जजों की तनख्वाह में भी इसी धारा के आधार कमी की जा सकती है। संघ सरकार को यह भी अधिकार है कि वह राज्यों की सरकारों को आदेश दे सके कि वह अपने आर्थिक विषयों का प्रबन्ध उसकी आज्ञानुसार करें तथा अपना वार्षिक बजट एवं दूसरे आर्थिक बिल राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिये पेश करें।

राष्ट्रपति की संकटकालीन शक्तियों की आलोचना

संविधान की ३५२ से लगाकर ३६० धाराओं में राष्ट्रपति को जो विशेष अधिकार दिये गये हैं और जिनका वर्णन हमने ऊपर किया है, उनको लेकर हमारे संविधान के अनेक आलोचकों ने विधान निर्माताओं पर करारे छींटे कसे हैं। उन्होंने कहा है कि ऐसे जनतन्त्र शासन में जिसके अन्तर्गत राज्य की शक्ति जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों के हाथ में हो, राष्ट्रपति को जो संसद् के प्रति उत्तरदायी नहीं तथा जिसका चुनाव भी स्वयं जनता नहीं करती, इतने अधिकारों का दिया जाना कोई अच्छी बात नहीं। वह कहते हैं कि ऐसे अधिकार तो केवल निरंकुश राज्यों में ही दिये जाते हैं, जनतन्त्र राज्यों में नहीं। इन अधिकारों को पाकर राष्ट्रपति देश का डिक्टेटर बन कर काम कर सकता है।

परन्तु, समालोचकों की उपरोक्त सब बातों में अधिक तत्त्व नहीं। कारण, वह यह नहीं समझते कि राष्ट्रपति नये विधान के अन्तर्गत भारत का केवल प्रधाननिष्ठ नाम-धारी एवं उत्सवमूर्ति अध्यक्ष है। शासन की वास्तविक शक्ति जनता द्वारा चुने गये उन मन्त्रियों के हाथ में निहित है जो संसद् के प्रति उत्तरदायी हैं। राष्ट्रपति अपने अधिकारों का उपयोग केवल उस दशा में कर सकते हैं जब प्रधान मन्त्री उन्हें ऐसा करने की सलाह दे। इसके अतिरिक्त संसद् के उन सदस्यों को जिनमें अधिकतर सदस्य राज्यों द्वारा चुने गये प्रतिनिधि हैं—सदा यह अधिकार होगा कि वह राष्ट्रपति को इन अधिकारों का उपयोग करने से रोक सकें।

देश की सङ्कटकालीन स्थिति में सारे राष्ट्र का हित इसी बात में है कि राज्य का शासन संघ सरकार द्वारा ही चलाया जाय, उसी के कन्धे पर अंतिम

दशा में सारे देश अथवा उसके किसी भी भाग की सुरक्षा और सुव्यवस्था का भार है। इसलिये ऐसी स्थिति में जब तक संघ सरकार के हाथों में कार्य करने की पूरी शक्ति नहीं होगी, वह देश की रक्षा नहीं कर सकेगी। हमारी नवप्राप्त स्वतन्त्रता को दृढ़ बनाने तथा राष्ट्र-विरोधी शक्तियों का दमन करने के लिये भी केन्द्रीय सरकार के हाथ में इन सब शक्तियों का केन्द्रीयकरण अत्यन्त आवश्यक है।

२. उप-राष्ट्रपति

नया संविधान भारत के लिये एक उप-राष्ट्रपति के चुनाव की भी व्यवस्था करता है। यह उप-राष्ट्रपति केवल उस समय चुने जायेंगे जब नव संविधान के अन्तर्गत लोकसभा तथा राज्य परिषद् के चुनाव हो चुकेंगे। अमरीका की भाँति यह उप-राष्ट्रपति राज्य परिषद् के अध्यक्ष होंगे। परन्तु, यदि किसी समय राष्ट्रपति बीमार होंगे, या किसी विशेष कारण से अपने काम की देखभाल न कर सकेंगे या त्यागपत्र दे देंगे या मृत्यु के कारण उनका स्थान रिक्त हो जायगा, तो उप-राष्ट्रपति उनके स्थान पर, उस समय तक कार्य करेंगे जब तक नये राष्ट्रपति का चुनाव न हो जाय। इस बात में अमरीका और भारत के उप-राष्ट्रपति की स्थिति में बड़ा भारी अन्तर है। अमरीका के राष्ट्रपति के त्यागपत्र देने या मृत्यु हो जाने पर, उप-राष्ट्रपति उनका स्थान उनकी शेष अवधि के लिये ले लेता है। परंतु, भारत में ऐसी अवस्था में वह केवल उतने समय तक के लिये राष्ट्रपति का पद ग्रहण करेंगे जब तक नये राष्ट्रपति का चुनाव नहीं हो जाता।

उपराष्ट्रपति का चुनाव

उप-राष्ट्रपति का चुनाव पार्लियामेंट के दोनों भवनों के सदस्यों द्वारा किया जायगा। इस पद के चुनाव के लिये किसी उम्मीदवार में वही योग्यता होनी चाहिये जो राष्ट्रपति के पद के लिये आवश्यक है। उप-राष्ट्रपति को राज्य परिषद् के द्वारा अविश्वास का प्रस्ताव पास हो जाने तथा ऐसे प्रस्ताव पर लोक सभा की अनुमति मिल जाने पर अलग किया जा सकेगा। राष्ट्रपति के समान उप-राष्ट्रपति के पद की अवधि ५ वर्ष ही होगी। यदि किसी समय

उप-राष्ट्रपति राष्ट्रपति के पद पर कार्य करेंगे तो उन्हें वही सब अधिकार प्राप्त होंगे तथा वही वेतन तथा सुविधाएँ मिलेंगी जो राष्ट्रपति को मिलती है।

३. मंत्रिमंडल

भारतीय संघ की वास्तविक कार्यपालिका एक मंत्रिमंडल है। उसी के हाथ में शासन की सारी शक्ति निहित है। मंत्रिमंडल संसद् (Parliament) के प्रति उत्तरदायी है। संसद् में जनता के प्रतिनिधि हैं। इस प्रकार कार्यपालिका का अंतिम उत्तरदायित्व जनता के प्रति है। एक प्रजातन्त्र शासन की यही सबसे बड़ी पहचान है। जनता जब चाहे मंत्रिमन्डल को बदल सकती है। आम चुनाव तथा उप-चुनाव के समय जनता को मंत्रिमंडल के प्रति अपना विश्वास अथवा अविश्वास प्रकट करने का पूरा अवसर मिलता है। शेष अवसरों पर भी प्रस्तावों, सभाओं, जुलूसों, प्रदर्शनों, हड़तालों तथा समाचार पत्रों द्वारा जनता शासन संबंधी विषयों पर अपनी राय सरकार के कानों तक पहुँचा सकती है। एक उत्तरदायी सरकार को जनता की इस आवाज की कद्र करनी पड़ती है। वह उसके प्रति उदासीन नहीं रह सकती।

नये चुनाव होने तक संघीय मंत्रिमन्डल का स्वरूप—नये विधान के अंतर्गत आम चुनाव सन् १६५१ के अंत तक होंगे। उस समय तक के लिये संविधान की ३८१ धारा में कहा गया है कि संविधान लागू होने से पहले के मंत्री, राष्ट्रपति के मंत्रिमंडल के रूप में कार्य करते रहेंगे। २६ जनवरी सन् १६५० को एक प्रकार से हमारे मंत्रिमंडल का पुनर्संगठन हुआ। उस दिन हमारे राष्ट्रपति के सम्मुख सभी मन्त्रियों ने अपने पद की दोबारा शपथ ग्रहण की और कहा कि वह भारतीय गणतन्त्र राज्य के प्रति वफादार रहेंगे।

हमारे वर्तमान मन्त्रिमण्डल के नेता प्रधान मन्त्री पंडित जवाहरलाल नेहरू हैं। उन्हीं के द्वारा मन्त्रिमण्डल का सङ्गठन किया गया है। वही सब मन्त्रियां के बीच काम का बँटवारा करते हैं। मंत्रिमंडल की बैठकों में वही सभापति का आसन ग्रहण करते हैं। उनका मुख्य कार्य सभी मंत्रियों के विभागों के कार्य की देखभाल करना है। इस प्रकार वह शासन की इकाई तथा सरकार के विभिन्न विभागों में सामञ्जस्य स्थापित करते हैं। राष्ट्रपति को

प्रत्येक सरकारी कार्य में वही सलाह देते हैं। उनके हाथ में शासन की सबसे अधिक शक्ति निहित है। राष्ट्रपति राज्य के नाम मात्र के अध्यक्ष हैं; उनकी सारी शक्तियों का उपयोग, वास्तव में, प्रधान मंत्री द्वारा ही किया जाता है। मन्त्रियों को चुनना, उन्हें अलग करना, उनके त्याग का स्वीकार करना, उनके बीच काम का बँटवारा करना, उन्हीं का काम है। राष्ट्र और सरकार की नीति का वही उल्लेख करते हैं। कैबिनेट की मीटिंग में भी वही सभापति का आसन ग्रहण करते हैं।

आजकल हमारे मंत्रिमन्डल में तीन प्रकार के मन्त्री हैं—एक कैबिनेट मन्त्री, दूसरे राज्य मन्त्री (Ministers of State) और तीसरे उपमन्त्री (Deputy Ministers)। कैबिनेट मन्त्री वह मन्त्री कहलाते हैं जो सरकार की अंतरंग सभा के सदस्य होते हैं तथा जो सरकार की नीति का निश्चय करने में भाग लेते हैं। ऐसे मन्त्रियों को ३५०० रु० मासिक वेतन, रहने के लिये मुफ़्त मकान तथा सवारी के लिए मोटर गाड़ी दी जाती है। राज्य मन्त्री 'कैबिनेट' के सदस्य नहीं होते। वह कैबिनेट की मीटिंगों में भाग नहीं ले सकते। उन्हें इन मीटिंगों में केवल उस समय आमंत्रित किया जाता है जब उनके विभाग के कार्य के सम्बंध में किसी बात पर विचार करना हो। राज्य मन्त्री सरकारी विभाग का स्वतंत्र चार्ज ले सकते हैं परंतु अधिकतर उनके विभाग की देखभाल किसी कैबिनेट मन्त्री को भी करनी पड़ती है। उपमंत्री, कैबिनेट मंत्रियों के सहायक मंत्रियों के रूप में कार्य करते हैं। वह किसी दशा में भी कैबिनेट की सभाओं में सम्मलित नहीं हो सकते। राज्य मंत्रियों को ३०००रु० मासिक और उपमंत्रियों को २००० रु० मासिक वेतन दिया जाता है। वैसे सब मंत्रियों के वेतन का अंतिम निश्चय संसद् द्वारा ही किया जाता है। राज्य मंत्रियों तथा उपमंत्रियों को रहने के लिए मुफ़्त मकान तथा मोटर गाड़ी भी नहीं दी जाती। उपमंत्रियों को माननीय भी नहीं कहा जाता।

आजकल हमारे वर्तमान केन्द्रीय मण्डल का स्वरूप इस प्रकार है। मंत्रियों के नाम के सन्मुख जो विभाग दिये गये हैं, वह उन्हीं की देखभाल करते हैं:—

प्रधान मंत्री

पं. जवाहरलाल नेहरू—प्रधान मंत्री तथा विदेशी मंत्री

कैबिनेट मंत्री

मौलाना अबुल कलाम आज़ाद—शिक्षा मंत्री
श्री. श्री राजगोपालाचारी—गृह मन्त्री
सरदार बलदेव सिंह—रक्षा मन्त्री
श्री. सी. डी. देशमुख—वित्त मन्त्री
श्री. जगजीवन राम—श्रम मन्त्री
श्री. कन्हैयालाल मुन्शी—खाद्य मन्त्री
श्री. हरिकृष्ण मेहताब—उद्योग तथा व्यापार मन्त्री
श्री. श्री प्रकाश—प्राकृतिक साधन एवं विज्ञान अनुसंधान मन्त्री
श्री. गोपालस्वामी आयंगर—रेलवे व रियासती विभाग मन्त्री
श्री. रफी अहमद किदवई—डाक तार तथा सञ्चार मंत्री
डाक्टर अंबेदकर—क़ानून मंत्री
श्री. विष्णुहरि गाडगिल—निर्माण, उत्पत्ति तथा रसद मंत्री
श्रीमती राजकुमारी अमृतकौर—स्वास्थ्य मंत्री

राज्य मंत्री

श्री. रंगनाथ दिवाकर—रेडियो तथा समाचार विभाग (Information & Broadcasting)
श्री. सत्य नारायण सिनहा–संसद् विषय (Parliamentary Affairs)
श्री. अजीत प्रसाद जैन—पुर्नवास विभाग (Rehabilitation)
श्री. के. सन्तानम—रेलवे विभाग
श्री सी. सी. विस्वास—अल्पसंख्यक हित विभाग (Minorities Affairs)
श्री. महावीर त्यागी—वित्त विभाग (Finance Deptt.)

उप-राज्य मंत्री

श्री. बी. वी. केसकर—उप विदेश मंत्री
श्री. करमारकर—उप व्यापार व उद्योग मन्त्री
श्री. मेजर जनरल हिम्मतसिंह—उप रक्षा मन्त्री
श्री. ऐस. ऐन. बरगाईन—उप निर्माण, उत्पत्ति तथा रसद मन्त्री
श्री० ऐम थिरुमलराव—उप खाद्य मंत्री
श्री० राजबहादुर—उप डाँक तार तथा संचार मंत्री

इस प्रकार हमारे वर्तमान मंत्रिमंडल में १४ कैबिनेट मंत्री, ६ राज्य मंत्री तथा ६ उप मंत्री हैं। पिछले दिनों, जून सन् १६५१ में, प्रधानमंत्री ने दो और संसद् के सदस्यों अर्थात् श्री सतीशचन्द्र तथा श्री मिश्र को—अपना आनरेरी पार्लियामेंटरी सैक्रैटरी बनाने की घोषणा की थी। पार्लियामेंटरी सैक्रैटरी मंत्री नहीं कहे जाते; न ही उन्हें मंत्री मंडल का अंग माना जाता है। प्रथम बार भारत के केन्द्रीय शासन में, इस नये पद का आविष्कार इसलिए किया गया है जिससे संसद् के कुछ नौजवान सदस्यों को शासन का अनुभव प्राप्त हो सके।

मंत्रियों की संख्या कितनी होनी चाहिए, इसके विषय में कोई विशिष्ट नियम नहीं है। प्रधान मंत्री द्वारा ही मंत्रियों की संख्या निश्चित की जाती है। न ही मंत्रियों की योग्यता के सम्बन्ध में कोई नियम है। किसी यूनीवर्सिटी की डिगरी का होना मंत्री पद के लिए अनिवार्य नहीं। हमारे वर्तमान मंत्रिमंडल में श्री महावीर त्यागी केवल आठवीं कक्षा तक ही शिक्षित हैं। सरदार पटेल की मृत्यु तक, हमारे मंत्रिमंडल में एक उप-प्रधान मंत्री का भी पद था। परन्तु उनकी मृत्यु के पश्चात् उस पद को तोड़ दिया गया। आजकल हमारे मंत्रि-मंडल के कोई भी सदस्य उप-प्रधान मंत्री नहीं हैं। वैसे मौलाना आजाद कांग्रेस पार्टी के डिप्टी लीडर तथा सबसे पुराने मंत्री होने के कारण सब से सीनियर कैबिनेट मंत्री माने जाते हैं।

पिछले दो वर्षों में भारतीय मंत्रिमंडल में अनेक परिवर्तन हुये हैं। सबसे पहिले श्री शनमुखम चैटी हमारे प्रथम मंत्रिमंडल के वित्त मन्त्री थे; इसके पश्चात डाक्टर जौन मथाई को इस पद के लिए चुना गया। उनके त्याग पत्र दे देने पर श्री सी० डी० देशमुख को इस पद पर नियुक्त किया गया। वैसे श्री देशमुख इंडियन सिविल सर्विस के सदस्य हैं। उनका मन्त्री पद के लिये चुना जाना, जहाँ एक ओर उनकी योग्यता और बुद्धिमता का परिचायक था, वहाँ दूसरी ओर वह यह साबित करता था कि हमारे देश के राजनीतिज्ञों में अर्थ विशेषज्ञों की कितनी कमी है। डाक्टर मथाई के त्याग पत्र के पश्चात् बहुत दिनों तक उनका स्थान खाली पड़ा रहा। उत्तर प्रदेश के मुख्य मन्त्री, श्री गोविन्द वल्लभ पंथ से प्राथना की गई कि वह इस पद को स्वीकार कर लें, परन्तु उनके प्रांत की कांग्रेस पार्टी ने उन्हें ऐसा न करने दिया। प्रजातंत्र

राष्ट्रों में साधारणतया सरकारी नौकरों को मन्त्री पद के लिए नहीं चुना जाता। परन्तु भारतवर्ष में अर्थ एवं वित्त विशेषज्ञों की कमी के कारण हमारे प्रधान मन्त्री को ऐसा करना पड़ा।

वित्त मन्त्री के अतिरिक्त दूसरे मन्त्रियों के पद में भी पिछले दो वर्षों में कुछ परिवर्तन हुये हैं। डाक्टर श्याम प्रसाद मुकर्जी तथा श्री के० सी नियोगी ने सन् १९५० में मन्त्रिमंडल से इसलिए त्याग पत्र दे दिया कि ये नेहरू सरकार की पाकिस्तान के साथ पूर्वी बङ्गाल के प्रश्न पर, समझौते की नीति का समर्थन नहीं करते थे। श्री जैराम दास दौलतराम को आसाम का राज्यपाल बनाकर उनके स्थान पर श्री के० ऐम० मुन्शी की नियुक्ति की गई। इसी प्रकार मोहन लाल सक्सैना के स्थान पर श्री अजीत प्रसाद जैन पुर्नवास मन्त्री नियुक्त किए गये।

हमारे प्रधान मन्त्री की यह नीति है कि वह संसद् के योग्य एवं नौजवान सदस्यों को शासन प्रबन्ध का अनुभव कराना चाहते हैं। इसीलिए आर्थिक संकट के रहते हुये भी वह नये नये सदस्यों को राज्य एवं उपमन्त्री का पद प्रदान करते रहते हैं।

आम चुनाव होने तक यही मंत्रिमंडल भारत के केन्द्रीय शासन का प्रबन्ध करता रहेगा। इसके पश्चात् मन्त्रिमण्डल का पुनः संगठन होगा, जिसमें केवल उसी दल के सदस्य सम्मिलित किए जायेंगे जिसे आम चुनावों में सबसे अधिक सफलता प्राप्त होगी।

आम चुनाव के पश्चात् नये मंत्रिमंडल का निर्माण—नये चुनाव होने के पश्चात् मंत्रिमंडल का पुर्नसंगठन इस प्रकार होगा :—

प्रधान मंत्री का चुनाव राष्ट्रपति द्वारा किया जायगा। वह केवल ऐसा व्यक्ति होगा जिसे संसद् के निचले भवन अर्थात् लोक सभा का बहुमत प्राप्त हो। दूसरे मंत्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा नहीं वरन प्रधान मन्त्री द्वारा की जायगी। इस क्षेत्र में भारतीय विधान दूसरे विधानों की अपेक्षा अधिक प्रजातन्त्रवादी है। क्योंकि वह प्रधान मन्त्री के नेतृत्व को स्पष्ट रूप से स्वीकार करता है और उसे इस बात का अधिकार देता है कि वह जिसे चाहे अपना मन्त्री चुने तथा जिस प्रकार चाहे उनके बीच काम का बँटवारा करे। मन्त्री केवल

वही व्यक्ति हो सकेंगे जो संसद् Parliament के किसी भवन के सदस्य हों। छै महीने से अधिक काल के लिये कोई बाहर का व्यक्ति मन्त्री नहीं बनाया जा सकेगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मन्त्रियों के चुनाव में राष्ट्रपति के अधिकार अति सीमित हैं। राष्ट्रपति प्रधान मन्त्री का चुनाव कर सकते हैं, परंतु मंत्रियों का नहीं। प्रधान मंत्री के चुनाव में भी उन्हें केवल उस दशा में अपना विवेक प्रयोग में लाने का अधिकार है जब लोक सभा में बहुत से दल हों और किसी एक दल को प्रधानता प्राप्त न हो। ऐसी दशा में राष्ट्रपति को अत्यन्त बुद्धिमानी से काम लेना पड़ता है, कारण प्रधान मंत्री के ठीक चुनाव पर ही शासन का उच्च स्तर निर्भर करता है। यदि प्रधान मन्त्री अयोग्य, पद लोलुप, स्वार्थी, तथा दल ग्रस्त हो तो शासन का स्तर नीचे गिर जाता है और देश अधःपतन की ओर जाने लगता है।

मंत्रिमंडल का संगठन (Organisation of the Cabinet)

मन्त्रिमंडलात्मक सरकार के आधीन, जैसा पहिले बताया जा चुका है, शासन की वास्तविक शक्ति मंत्रियों के हाथ में ही केन्द्रित होती है। राष्ट्रपति कार्यपालिका के नाम धारी अध्यक्ष होते हैं। वास्तव में उनकी सारी शक्तियों का उपयोग मंत्रियों द्वारा ही किया जाता है। मंत्रियों के सम्मिलित रूप को 'कैबिनेट' कहा जाता है। जैसा हम पहिले देख चुके हैं, सब मंत्रियों के लिए यह आवश्यक नहीं कि वह 'कैबिनेट' के सदस्य हो। राज्य मंत्री, उपराज्य-मंत्री तथा पार्लियामेंटरी सैक्रेटरी कैबिनेट के सदस्य नहीं होते। एक प्रकार से 'कैबिनेट' को हम मन्त्रिमंडल (Council of ministers) की अंतरग, सभा (Executive Body) कह सकते हैं। इस सभा के सभी प्रमुख मंत्री सदस्य होते हैं। आजकल भारतीय मंत्रिमंडल के सदस्यों की कुल संख्या २६ है परन्तु 'कैबिनेट' के सदस्यों की संख्या केवल १४ है। इंगलैंड में भी इसी प्रकार का प्रबन्ध हैं। वहाँ मंत्रियों की संख्या लगभग ५० होती है, परन्तु कैबिनेट के सदस्यों की संख्या २० या २१ से अधिक नहीं होती। कभी-कभी 'कैबिनेट' के अन्तर्गत एक और छोटी कैबिनेट (Cabinet within Cabinet) बना दी जाती है जिसके सदस्य प्रधान मंत्री तथा तीन-चार इसके प्रमुख मंत्री

होते हैं। हमारे देश में भी इस प्रकार की छोटी 'कैबिनेट', "मंत्रिमंडल की आर्थिक सब-कमेटी" है, जिसके सदस्य पं० जवाहरलाल नेहरू, मौलाना आजाद, श्री राजगोपालाचारी, सरदार बल्देवसिंह, श्री देशमुख तथा गोपाला स्वामी आयंगर हैं। युद्ध अथवा किसी भीषण सङ्कट के समय इस प्रकार की छोटी कैबिनेट से अधिक काम लिया जाता है। अथवा साधारणतया सभी कैबिनेट के सदस्य मिलकर सरकार की नीति का निश्चय करते हैं।

सरकारी विभाग (Departments of the Government of India)

वैसे तो कैबिनेट के सदस्य अलग-अलग अपने अपने विभागों की देख-भाल करते हैं, परन्तु शासन की नीति का निश्चय वह सब एक साथ मिल कर करते हैं। हमारे देश में सरकारी विभागों का विभाजन इस प्रकार है :—

(१) विदेश विभाग (Ministry of External Affairs)
(२) ग्रह विभाग (Ministry of Home Affairs)
(३) रक्षा विभाग (Ministry of Defence)
(४) वित्त विभाग (Ministry of Finance)
(५) व्यापार तथा उद्योग विभाग (Ministry of Commerce & Industry)
(६) संचार विभाग (Ministry of Communications)
(७) परिवहन विभाग (Ministry of Transport)
(८) शिक्षा विभाग (Ministry of Education)
(९) स्वास्थ्य विभाग (Ministry of Health)
(१०) कृषि व खाद्य विभाग (Ministry of Agriculture & Food)
(११) रियासती विभाग (Ministry of States)
(१२) विधि (कानून) विभाग (Ministry of Law)
(१३) निर्माण, उत्पत्ति तथा रसद विभाग (Ministry of Works, Production & Supply)
(१४) श्रम विभाग (Ministry of Labour)

(१५) प्राकृतिक साधन तथा वैज्ञानिक, अनुसंधान विभाग (Ministry of Natural Resources & Scientific Research)

(१६) रेडियों व सूचना विभाग (Ministry of Information & Broadcasting)

(१७) पुनर्वास विभाग (Ministry of Relief & Rehabilitation)

(१८) संसद् विषय विभाग (Ministry of Parliamentary Affairs)

प्रत्येक विभाग का मुख्य अधिकारी एक मंत्री होता है जिसके आधीन एक सेक्रैटरी, कुछ डिप्टी सेक्रैटरी, अन्डर सेक्रैटरी तथा सुपरिंटेन्डेन्ट इत्यादि कार्य करते हैं। हमारे देश में सरकार के १५ विभाग कैबिनेट मंत्रियों के आधीन हैं; शेष ३ विभाग राज्य मंत्रियों के आधीन हैं। कोई विभाग कैबिनेट मंत्री के आधीन रहे या राज्य मंत्री के आधीन इसका निश्चय प्रधान मंत्री द्वारा ही किया जाता है। कभी-कभी एक ही मंत्री के आधीन कई-कई सरकारी विभाग हो सकते हैं, जैसे आजकल रियासती तथा परिवहन विभाग, एक ही मंत्री, अर्थात् श्री गोपालस्वामी आयंगर के आधीन है। इससे पहिले सरदार पटैल सरकार के ३ महत्वपूर्ण विभाग, अर्थात् गृह, रियासत तथा रेडियो व सूचना विभाग के अध्यक्ष थे।

संयुक्त उत्तरदायित्व (Joint Responsibility of the Cabinet)

सब मंत्री अलग-अलग अपने-अपने विभागों की देख-भाल करते हैं, परन्तु कैबिनेट की सभाओं में उन सब को एक दूसरे विभाग की आलोचना एवं टीका-टिप्पणी करने का अधिकार होता है। वास्तव में सरकार की नीति का निश्चय इन्हीं कैबिनेट की सभाओं में किया जाता है। इस सभा का सभापति प्रधान मंत्री होता है और उसकी अनुपस्थिति में कैबिनेट का सबसे सीनियर मंत्री कैबिनेट के निर्णय अत्यन्त गुप्त रक्खे जाते हैं और इसके लिए कैबिनेट का अपना अलग सेक्रैटेरियट होता है। कैबिनेट की सभाओं में प्रत्येक सदस्य को अपने विचार प्रगट करने की स्वतंत्रता होती है, परन्तु एक बार कोई निश्चय हो जाने के पश्चात्, उसे सबको मानना पड़ता है तथा उस पर अमल करना पड़ता है। कोई मंत्री यह नहीं कह सकता कि उसने अमुक बात का

विरोध किया था और इसलिए वह उस नीति को मानने के लिए बाध्य नहीं है। सब मंत्री संयुक्त रूप से संसद् के प्रति उत्तरदायी होते हैं। किसी एक विभाग की नीति सारी सरकार की नीति मानी जाती है, इसलिए यदि संसद् के सदस्य किसी एक मंत्री या विभाग के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास करना चाहें तो वह सारे मन्त्रिमण्डल के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव माना जाता है, और उसके पास हो जाने पर समस्त मन्त्रिमण्डल को अपने पद से त्याग-पत्र देना पड़ता है। इस प्रकार संयुक्त जिम्मेदारी (Joint Responsibility) मंत्रिमण्डलात्मक शासन की सबसे बड़ी पहिचान है।

यदि कोई मंत्री कैबिनेट के निर्णय को मानने के लिये तैयार न हों तो उन्हें अपने पद से स्वतः त्याग-पत्र देना पड़ता है। अन्यथा प्रधान मन्त्री भी उनका त्याग-पत्र माँग सकते हैं। डाक्टर श्यामा प्रसाद मुकर्जी तथा श्री नियोगी ने भारत पाकिस्तान समझौते के प्रश्न पर कैबिनेट से मतभेद हो जाने के कारण त्याग-पत्र दिया था। डाक्टर जौन मथाई ने भी योजना आयोग (Planning Commission) के निर्माण पर प्रधान-मन्त्री से मतभेद होने के कारण त्याग-पत्र दिया था।

बहुत बार प्रधान-मन्त्री किसी मन्त्री द्वारा त्रुटि करने पर उसका त्याग-पत्र माँग सकते हैं। श्री शनमुखम चैटी को इंकमटैक्स जाँच समिति के काम में भूल करने पर इसी प्रकार मन्त्री पद से अलग किया गया था।

प्रधान मंत्री का कैबिनेट में स्थान (Position of the Prime Minister in the Cabinet)

कैबिनेट के उपरोक्त वर्णन से पाठकों को विदित हो गया होगा कि प्रधान मन्त्री कैबिनेट का मुकुटमणि एवं मेरुदंड होता है। वह केन्द्रीय सरकार की धुरी के रूप में कार्य करता है। अंग्रेजी में उसे (Keystone of the Cabinet arch कह कर पुकारा गया है। वह समस्त शासन की इकाई स्थापित करता है। उसके ऊपर ही सरकार के समस्त कार्य की अन्तिम जिम्मेदारी रहती है। प्रत्येक महत्वपूर्ण राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय विषय पर उसी को निर्णय देना पड़ता है। संसद् में वह सरकार की ओर से आवश्यक प्रश्नों पर नीति का स्पष्टीकरण करता है। राष्ट्रपति और कैबिनेट के बीच सम्बन्ध

स्थापित करने के लिए भी वही 'कड़ी' का काम देता है। वह स्वयं सरकार के प्रत्येक महत्वपूर्ण कार्य से राष्ट्रपति को अवगत कराता है। बड़े-बड़े उच्च पदों पर व्यक्तियों की नियुक्ति के लिए भी वही राष्ट्रपति को सलाह देता है। अपने देश की विदेश नीति का वही उल्लेख करता है। बड़ी-बड़ी सार्वजनिक सभाओं, एवं सांस्कृतिक व व्यापारी संस्थाओं में उसी को सरकारी नीति की विवेचना करना पड़ता है। कैबिनेट की सभाओं में वही सभापति का आसन ग्रहण करता है तथा उनके लिए कार्य-क्रम निश्चित करता है। वह जब चाहे और जैसे चाहे अपने मंत्रि-मण्डल में परिवर्तन कर सकता है। सरकार की आर्थिक एवं गृह नीति का भी वही निर्णय करता है।

परन्तु इस सब का यह आशय नहीं कि कैबिनेट के दूसरे मंत्री कोई महत्ता नहीं रखते। प्रधान-मन्त्री अपने साथियों का केवल नेता होता है, उनका स्वामी नहीं। वह उनकी प्रत्येक महत्वपूर्ण विषय में राय लेता है तथा उनकी सम्मति एवं सहयोग से ही सरकार का कार्य भार चलाता है।

मंत्रियों के पद की अवधि (Term of the Ministers)

मन्त्रिमण्डलात्मक शासन के अन्तर्गत मन्त्रियों के पद की कोई निश्चित अवधि नहीं होती। वह केवल उसी समय तक अपने पद पर कायम रहते हैं जब तक उन्हें संसद का विश्वास प्राप्त हो। अविश्वास की दशा में उन्हें तुरन्त ही अपने पद से त्याग-पत्र दे देना पड़ता है।

मन्त्रिमंडल के कार्य (Functions of the Cabinet)

यहाँ यह अत्यन्त उपयुक्त होगा कि हम संक्षेप में मंत्रिमंडल के कार्यों का उल्लेख कर दें :—

(१) सर्वप्रथम सरकार की गृह एवं विदेश नीति का निश्चय करना कैबिनेट का सबसे आवश्यक एवं महत्वपूर्ण कार्य होता है। इस नीति का उल्लेख कैबिनेट के सदस्य राष्ट्रपति और प्रधान-मन्त्री के द्वारा कराते हैं।

(२) दूसरे, कैबिनेट राज्य के वैधानिक कार्य (Legislative Programme) का निश्चय करती है। संसद् में कौन से बिल प्रस्तुत किये जायँगे तथा उन्हें किस क्रम में उपस्थित किया जायगा, इसका निश्चय कैबिनेट को ही करना पड़ता है।

(३) तीसरे, राष्ट्र की आर्थिक और वित्तीय नीति का निश्चय कैबिनेट द्वारा ही किया जाता है। इसीलिए कैबिनेट के सब सदस्य मिलकर वार्षिक बजट एवं 'कर नीति' का निश्चय करते हैं। रुपये पैसे संबंधी बिल केवल मंत्रियों द्वारा ही संसद में प्रस्तुत किए जा सकते हैं, प्राइवेट सदस्यों द्वारा नहीं।

(४) चौथे, दूसरे देशों के साथ व्यापारिक एवं राजनीतिक संधि का निश्चय कैबिनेट को ही करना पड़ता है। युद्ध एवं सुलह का निश्चय भी कैबिनेट की सलाह पर संसद् द्वारा किया जाता है।

(५) शासन सम्बन्धी महत्वपूर्ण विषयों पर भी सब कैबिनेट सदस्यों को मिलकर निश्चय करना पड़ता है। उदाहरणार्थ नये राज्यों का निर्माण, वर्तमान राज्यों की सीमाओं में अदला बदली, भाषा के आधार पर प्रांतों का निर्माण, अधिकारों का विकेन्द्रीयकरण इत्यादि समस्त समस्याओं का निर्णय कैबिनेट के सदस्यों द्वारा ही किया जाता है।

(६) अंत में, सम्वैधानिक सम्बन्धी समस्त विषयों पर कैबिनेट के सदस्यों को ही निश्चय लेना पड़ता है, उदाहरणार्थ संविधान में कब और क्या संशोधन किये जायँ। विरोधी दलों के सुझावों को कहाँ तक स्वीकार किया जाय इत्यादि, यह ऐसे विषय हैं जिन पर कैबिनेट की बैठकों में ही निश्चय किया जाता है।

उच्च पदों पर अधिकारियों की नियुक्ति के सम्बंध में भी प्रायः पूरी कैबिनेट के सदस्यों की राय ली जाती है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मंत्रिमंडलात्मक शासन के आधीन कैबिनेट ही देश की वास्तविक शासक होती है। वही संयुक्त रूप से सरकार के समस्त विभागों की देखभाल करती है तथा राष्ट्र की नीति का निश्चय करती है।

योग्यता प्रश्न

(१) नये संविधान में राष्ट्रपति का क्या स्थान है? उसका मंत्रिमंडल के सदस्यों के साथ क्या सम्बन्ध होगा?

(२) राष्ट्रपति की वैधानिक व संकटकालीन शक्तियों का वर्णन कीजिये।

(३) क्या यह सच है कि नव संविधान के अंतर्गत राष्ट्रपति को न्यायशाली अधिकार दे दिये गये हैं?

(४) नव संविधान के अंतर्गत राष्ट्रपति का चुनाव किस प्रकार किया जाता है ? यह प्रणाली अमरीका से किस दशा में भिन्न है ?

(५) भारत के राष्ट्रपति और अमरीका के प्रधान की शक्तियों की तुलना कीजिये।

(६) भारत में राष्ट्रपति को वही स्थान प्राप्त है जो इङ्गलैंड के शासन में सम्राट को। यह कथन कहाँ तक ठीक है।

(७) नये विधान के अंतर्गत केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल का संगठन किस प्रकार होता है ? वर्तमान मन्त्रिमण्डल का स्वरूप क्या है ?

(८) प्रधान मन्त्री, मन्त्रि परिषद् का मुकुटमणि है। यह कथन कहाँ तक ठीक है। प्रधान मन्त्री और दूसरे मन्त्रियों के सम्बन्ध का विवेचन कीजिये।

(९) कैबिनेट मन्त्री, राज्य मन्त्री और उपमन्त्री में क्या भेद है। यह भेद किस लिये रक्खा गया है ?

(१०) मन्त्री परिषद् के संगठन एवं उसके कार्यों का विवरण कीजिये।

अध्याय ६

संघ संसद् (Union Parliament)

वर्तमान संघ संसद्

नये संविधान के अन्तर्गत आम चुनाव होने तक, संविधान की ३१६वीं धारा में कहा गया है कि २६ जनवरी, १९५० से पहले कार्य करने वाली संविधान सभा के सदस्य भारतीय संसद् (Indian Parliament) के रूप में कार्य करते रहेंगे। २६ जनवरी तक इन सदस्यों की संख्या ३०८ थी। इसके पश्चात् संविधान की सभा के उन सदस्यों ने जो प्रांतीय विधान सभा तथा संविधान सभा दोनों के सदस्य थे, त्यागपत्र दे दिया। कारण कि नये संविधान के अन्तर्गत कोई व्यक्ति एक समय में केवल एक ही विधान मंडल का सदस्य हो सकता है, एक से अधिक का नहीं। इस प्रकार २६ जनवरी के पश्चात् जब २८ जनवरी को गणतन्त्र भारत की प्रथम संसद् का अधिवेशन आरंभ हुआ तो उसमें लगभग १०० नये सदस्य उपस्थित थे। इसके अतिरिक्त भारतीय संसद् में कुछ ऐसी नई रियासतों को भी प्रतिनिधित्व दे दिया गया है जो पिछले कुछ दिनों में ही भारतीय यूनियन में सम्मिलित हुई थीं। उदाहरणार्थ हैदराबाद को १६ सीटें दी गई हैं।

भारतीय संसद् के वर्तमान सदस्यों की संख्या ३२५ है। इन सदस्यों का चुनाव सीधा जनता द्वारा नहीं किया गया वरन् प्रांतीय विधान सभाओं द्वारा किया गया था। ३२५ सदस्यों में प्रांतों, रियासतों, हिंदू, मुसलमान, सिख, ईसाई, पारसी, ऐंग्लो-इण्डियन सभी जातियों तथा हितों के प्रतिनिधि सम्मिलित हैं। इनमें अधिकतर सदस्य कॉंग्रेस पार्टी के मेम्बर हैं; हमारी संसद् में अभी तक किसी शक्तिशाली विरोधी दल (Opposition Party) का निर्माण नहीं हुआ है। परन्तु आशा है कि नये संविधान के अन्तर्गत चुनाव होने के

पश्चात् दूसरे प्रजातन्त्रवादी देशों की भाँति हमारे देश में एक शक्तिशाली विरोधी दल का निर्माण हो जायगा।

हमारी वर्तमान संघ संसद् का स्वरूप इस प्रकार है :—

हिंदुओं की संख्या	२४९
सिखों की संख्या	४
मुसलमानों की संख्या	३५
ऐंग्लो इण्डियन, पारसी, ईसाई इत्यादि	८
खाली स्थान	२९
सदस्यों का कुल जोड़	३२५

विभिन्न राज्यों का प्रतिनिधित्व इस प्रकार है :—

राज्य का नाम	सदस्य संख्या
आसाम	९
बिहार	३६
बंबई	२९
मध्य प्रदेश	२०
मद्रास	५०
उड़ीसा	१४
पंजाब	१६
उत्तर प्रदेश	५७
पश्चिमी बंगाल	२१
हैदराबाद	१६
जम्मू और काश्मीर	४
मध्य भारत	७
मैसूर	७
पटियाला और पूर्वी-पंजाब संघ	३
राजस्थान	१२
सौराष्ट्र	५

ट्रावनकोर-कोचीन	७
विंध्य प्रदेश	४
अजमेर	१
भोपाल	१
कूच बिहार	१
कुर्ग	१
देहली	१
हिमाचल प्रदेश	१
कच्छ	१
मनीपुर-त्रिपुरा	१
	३२५

नव संविधान के अन्तर्गत संघ संसद्

नये संविधान के अन्तर्गत साधारण निर्वाचन सन् १९५१ के अंत में होंगे। उस समय, संसार के सभी संघीय संविधानों की भाँति, संघ संसद् के अन्तर्गत राष्ट्रपति और दो भवन होंगे—एक का नाम होगा लोक सभा (House of People) और दूसरे का नाम होगा राज्य परिषद् (Council of State)। राष्ट्रपति संसद् के अविभाज्य अंग हैं। दोनों भवनों से जो बिल पास होंगे उन सब पर राष्ट्रपति की स्वीकृत आवश्यक है। उन्हीं के द्वारा सब कानून लागू किये जायँगे तथा प्रवर्तित होंगे। लोक सभा के सदस्य भारत की ३३ करोड़ जनता के प्रतिनिधि होंगे। उनका चुनाव जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से किया जायगा। 'राज्य परिषद' के सदस्य संघ के अन्तर्गत राज्यों के प्रतिनिधि होंगे। उनका चुनाव राज्यों के निम्न भवन अर्थात् विधान सभा (Legislative Assembly) द्वारा किया जायगा। इन दोनों की व्यवस्था के सम्बन्ध में अब हम संक्षिप्त वर्णन नीचे देते हैं।

लोक सभा (House of the People)

संसार के सभी प्रजातन्त्रवादी विधानों की भाँति भारत में भी 'लोक सभा' की शक्ति दूसरे भवन अर्थात् 'राज्य परिषद' की अपेक्षा अधिक होगी। संविधान में कहा गया है कि 'लोक सभा' में कुल सदस्यों की संख्या अधिक

से अधिक ५०० होगी तथा ५ लाख से ७॥ लाख जनता के पीछे एक प्रतिनिधि लोक सभा में चुना जायगा।

१२ अप्रैल १९५० को संविधान की उपरोक्त धारा के अन्तर्गत कानून मन्त्री डाक्टर अम्बेदकर ने संसद् में एक बिल पेश किया जो ६ जून सन् १९५१ को स्वीकार कर लिया गया।

इस कानून के अनुसार लोक सभा के सदस्यों की संख्या निश्चित की गई है। यह सदस्य विभिन्न राज्यों द्वारा इस प्रकार चुने जायेंगे :—

नाम राज्य	सदस्य संख्या
उत्तर प्रदेश	८६
मद्रास	७५
बिहार	५५
बंबई	४५
पश्चिमी बंगाल	३४
मध्य प्रदेश	२९
उड़ीसा	२०
पंजाब	१८
आसाम	१२
कुल योग ए राज्य	३७४
हैदराबाद	२५
जम्मू-काश्मीर	६
मध्य भारत	११
मैसूर	११
पूर्वी-पंजाब रियासती संघ	५
राजस्थान	२०
सौराष्ट्र	६
ट्रावनकोर-कोचीन	१२
कुल योग बी राज्य	९६

विंध्य प्रदेश	६
हिमाचल प्रदेश	३
देहली	४
अजमेर	२
भोपाल	२
बिलासपुर	१
कुर्ग	१
कच्छ	२
मनीपुर	२
त्रिपुरा	२
अंडेमान	१
कुल योग सी राज्य	२६
कुल जोड़	४६६

४६६ सदस्यों में से ७२ सदस्य हरीजनों में से चुने जाँयगे तथा २६ सीटें जन जातियों के लिए सुरक्षित रक्खी गई हैं।

प्रत्यक्ष चुनाव—कानून में कहा गया है कि जम्मू-काश्मीर तथा अन्डेमान निकोबार को छोड़कर, जहाँ के प्रतिनिधि राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किये जायेंगे, शेष राज्यों में उनका सीधा जनता द्वारा चुनाव किया जायगा।

वयस्क (बालिग) मताधिकार (Adult Franchise)—प्रत्येक ऐसे स्त्री और पुरुष को जिसकी आयु २१ साल से अधिक होगी तथा जो पागल, दिवालिया या जन्म से मूर्ख नहीं होगा या किसी घोर अपराध में सजा न पा चुका होगा या किसी चुनाव सम्बन्धी अपराध के कारण दंडित न हुआ होगा, राय देने का अधिकार होगा। नये विधान के अन्तर्गत यह एक क्रांतिकारी परिवर्तन है। इसके द्वारा भारत की १८ करोड़ जनता को राज्य के काम में भाग लेने का अवसर प्राप्त हो जायगा। भारत के इतिहास में कभी पहिले इतनी बड़ी जनसंख्या को ऐसा अधिकार प्राप्त नहीं हुआ था। भारत में ही नहीं, संसार के किसी भी देश में इतनी बड़ी जनसंख्या को

आज तक राय देने का अधिकार प्राप्त नहीं हुआ। पिछले चुनावों में इंगलैंड में मतदाताओं की संख्या ३½ करोड़ थी, अमरीका में यह संख्या ९½ करोड़ थी, रूस में १० करोड़ और जन राज्य चीन में १६½ करोड़। पुरुषों में ही नहीं, स्त्रियों में भी भारतवर्ष के अन्दर, मतदाताओं की संख्या सबसे अधिक होगी। नये संविधान के अन्तर्गत ९ करोड़ स्त्रियों को राय देने का अधिकार प्राप्त होगा जब कि १९३५ के संविधान के अन्तर्गत उनकी संख्या केवल ६६ लाख थी। १९१९ के भारतीय विधान के अनुसार केवल ३% और १९३५ के ऐक्ट के अनुसार केवल १३% जनता को राय देने का अधिकार था। नये विधान में संपत्ति, आमदनी, सामाजिक हैसियत, उपाधियां या साक्षरता इत्यादि की योग्यता मतदाता के लिये अनिवार्य नहीं रक्खी गयी है। प्रत्येक ऐसे बालिग स्त्री या पुरुष को जिसमें भला-बुरा सोचने की साधारण बुद्धि है—राय देने का अधिकार प्रदान कर दिया गया है। इस प्रकार भारत में शासन की अंतिम शक्ति उन किसानों, मजदूरों तथा खेत में काम करने वाले हलवाहों के हाथ में आ जायगी जो भारतीय जनता का ९०% अंग हैं। चुनाव सम्बन्धी कानून में जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है, कहा गया है कि भारत का प्रत्येक नागरिक जिसकी आयु १ मार्च सन् १९५० को २१ वर्ष थी तथा जो १ अप्रैल सन् १९४७ से ३१ दिसम्बर सन् १९४९ के बीच, कम से कम १८० दिन तक किसी एक जगह में रहा हो, उस क्षेत्र में जहाँ वह रहा है, मतदाता बन सकेगा।

पृथक् निर्वाचन प्रणाली का अन्त—(Abolition of Separate Electorate) नये संविधान के अन्तर्गत पृथक् निर्वाचन प्रणाली का भी अन्त कर दिया गया है। इसके पहिले भारतीय चुनावों में, हिंदुओं को और मुसलमान, सिख, ईसाई, ऐंग्लो इण्डियन अपनी अपनी जातियों के लोगों के लिये वोट देते थे। प्रत्येक जाति के प्रतिनिधियों के चुनाव के लिये अलग अलग निर्वाचन क्षेत्र होते थे तथा उनकी अपनी अलग निर्वाचक सूचियाँ होती थीं। प्रत्येक जाति के व्यक्तियों के लिये धारा सभा में स्थान सुरक्षित थे। उम्मीदवार धर्म के नाम पर दूसरी जाति के लोगों के विरुद्ध अपने धर्मावलंबियों को भड़काकर उनसे राय माँगते थे। चुनावों में खूब साम्प्रदा-

यिकता का जहर उगला जाता था। नये विधान ने अन्तर्गत हरिजन तथा कुछ पिछड़ी हुई कबाइली जातियों को छोड़कर और किसी के लिये सुरक्षित स्थान की व्यवस्था नहीं की गई है। चुनाव सब जातियों के लिये संयुक्त होंगे और उनमें हिंदू और मुसलमान, सिख और ईसाई सब एक दूसरे को मिल कर राय देंगे। इस प्रकार भारत के नये संविधान में भारत की एकता के दो बड़े शत्रु—सुरक्षित स्थान तथा पृथक् निर्वाचन प्रणाली—दोनों का अन्त कर दिया गया है। हरिजनों तथा पिछड़ी हुई जातियों के लिये सुरक्षित स्थानों की व्यवस्था इसलिये की गई है कि जिससे सहस्रों वर्षों से अधिकार-वंचित, यह जातियाँ, समाज के दूसरे व्यक्तियों के समान अपना जीवन का स्तर ऊँचा कर सकें। परन्तु, यह व्यवस्था केवल दस वर्ष के लिये ही की गई है। इसके पश्चात् सब जातियों को समान रूप से ही अधिकार प्राप्त होंगे।

निर्वाचन क्षेत्र (Electoral Constituencies)

नये संविधान के अन्तर्गत सन् १९५१ के अन्त में चुनाव करने के लिये सारा देश प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों (Territorial Constituencies) में बाँटा गया है। प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र की जनसंख्या लगभग ५ लाख से ७॥ लाख के बीच रक्खी गई है। साथ ही इन क्षेत्रों के बनाते समय, इस बात का ध्यान रक्खा गया है कि एक निर्वाचन क्षेत्र की जनसंख्या और प्रतिनिधियों में जो अनुपात है, वही सारे भारत के निर्वाचन क्षेत्रों के लिये कायम रहे। इस नियम के आधीन चुनाव क्षेत्रों की औसत जनसंख्या ७,२०,००० आई है। प्रथम चुनाव के पश्चात् जिस समय दूसरी जनगणना होगी तो उस समय विभिन्न क्षेत्रों का पुनर्संगठन किया जायगा जिससे बदली हुई जनसंख्या के हिसाब से, चुनाव करने के लिये क्षेत्रों का पुनर्विभाजन किया जा सके। यदि किसी जन गणना का फल उस समय निकलेगा जब एक 'लोक सभा' कार्य कर रही होगी तो उसके भंग होने तक नये क्षेत्रों के हिसाब से चुनाव नहीं किया जायगा; अर्थात् जनगणना के तुरन्त पश्चात् लोक सभा को तोड़ना आवश्यक नहीं होगा।

आगामी चुनावों के लिये निर्वाचन क्षेत्रों का विभाजन इस प्रकार किया गया है कि कुछ क्षेत्रों को मिला कर लोक सभा के चुनाव हो जायँ, और

उनको अलग अलग करने पर राज्य की विधान सभा के क्षेत्रों को बनाते समय दूसरा ध्यान यह रक्खा गया है कि शासन की इकाइयों जैसे जिले, तहसील या गाँवों का विभिन्न चुनाव क्षेत्रों के बीच विभाजन न हो। इस प्रबन्ध से चुनाव के कार्य में अत्यन्त सुगमता हो जायगी।

निष्पक्ष निर्वाचन—मुख्य निर्वाचन आयुक्त (चीफ इलैक्शन कमिश्नर) की नियुक्ति

हमारे नये संविधान का एक और अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य, चुनावों की निष्पक्षता तथा उनमें ईमानदारी कायम रखने के लिये, निर्वाचन कमीशन की नियुक्ति है। विधान की ३२४वीं धारा में कहा गया है कि निर्वाचकों की सूची, निर्वाचन क्षेत्रों का निर्माण, देश में होने वाले सभी चुनावों का निरीक्षण, एवं देख-भाल तथा चुनाव सम्बन्धी मुकदमों के फैसले के लिये राष्ट्रपति एक इलैक्शन कमीशन की नियुक्ति करेंगे, जिसका अध्यक्ष एक चीफ इलैक्शन कमिश्नर होगा तथा उसके नीचे इतने सहकारी इलैक्शन कमिश्नर या रीजनल इलैक्शन कमिश्नर नियुक्त किये जायेंगे, जितने राष्ट्रपति इस कार्य को पूरा करने के लिये उचित समझेंगे। चीफ इलैक्शन कमिश्नर अपने कार्य को पूर्ण निष्पक्षता के साथ कर सकें इसलिये संविधान में कहा गया है कि उसकी स्थिति वैसी ही होगी जैसी सुप्रीम कोर्ट के जजों की और उसको अपने पद से उसी प्रकार हटाया जा सकेगा जैसे सुप्रीम कोर्ट के जजों को। अपने कार्य को पूरा करने के लिये चीफ इलैक्शन कमिश्नर को अपने दफ्तर का स्टाफ स्वयं रखने का अधिकार होगा। सारे देश के चुनाव सम्बन्धी सभी विषयों की देख-भाल इसी इलैक्शन कमिश्नर द्वारा की जायगी। संविधान की इसी धारा के आधीन श्री ऐस० सैन को चीफ इलैक्शन कमिश्नर नियुक्त किया गया है।

चुनाव का तरीका (Procedure of Elections)

संविधान की ३२४वीं धारा से लेकर ३२९वीं धारा चुनाव के सम्बन्ध में लिखी गई हैं। इसके अतिरिक्त संविधान के अन्तर्गत एक जन प्रतिनिधित्व विधेयक (People's Representation Act) पास किया गया है जिसमें चुनाव के विषय में सम्पूर्ण बातें विस्तार से लिखी गई हैं।

इस कानून के अनुसार भारत में आगामी चुनाव इस प्रकार होंगे :—

केन्द्र व राज्यों के चुनाव एक साथ होंगे। पहिले प्रत्येक मतदाता को "विधान सभा" के उम्मीदवारों में अपना चुनाव करने के लिए मतपत्र (Ballot paper) दिया जायगा, और इसके पश्चात् 'लोकसभा' के चुनाव में वह उसी प्रकार भाग ले सकेगा। दोनों चुनाव वयस्क मताधिकार पर आधारित हैं; इसलिए उनके लिए एक ही मतदाता (Electoral Roll) होगी।

राज्यों व केन्द्रों की विधान सभा के चुनाव के लिये समस्त देश बहुत से निर्वाचन क्षेत्रों में बाँटा गया है। हिसाब लगाया गया है कि नव संविधान के अन्तर्गत, अंडेमान व जम्मू काश्मीर के ७ मनोनीत सदस्यों को छोड़कर, केन्द्र व राज्यों के लिए ३५४४ विधान निर्माताओं का चुनाव होगा। इन चुनावों के लिए एक सदस्य निर्वाचन क्षेत्र (Single Member Constituencies) की प्रणाली सबसे अधिक उपयुक्त समझी गई है, कारण इस प्रणाली के अंतर्गत चुनाव क्षेत्रों का क्षेत्रफल छोटा होता है और मतदाता उसे आसानी से समझ लेते हैं। परन्तु कुछ ऐसे क्षेत्रों के लिए जहाँ हरिजन तथा जन जाति (Tribal people) के लोगों के लिए कुछ स्थान सुरक्षित कर दिये गये हैं, बहु निर्वाचन क्षेत्रों (Plural member Constituencies) की व्यवस्था भी की गई है। सब मिलाकर संसद् के ४८९ और राज्यों के ३०५५ सदस्य चुनने के लिए १९२१ चुनाव क्षेत्र निर्धारित किए गये हैं। इनमें से ४०१ निर्वाचन क्षेत्र संसद् के सदस्यों के चुनाव के लिए हैं, जिनमें से ३१४ चुनाव क्षेत्रों में से एक-एक सदस्य चुना जायगा, ८६ निर्वाचन क्षेत्रों से दो-दो तथा १ निर्वाचन क्षेत्र से तीन सदस्य चुने जायेंगे।

राज्यीय विधान मंडलों के २५०० निर्वाचन क्षेत्रों में से १९८६ से एक-एक, ५३३ से दो-दो और एक निर्वाचन क्षेत्र से तीन सदस्य चुने जायेंगे।

प्राय: सभी राज्यों में मतदाताओं की सूचियाँ तैयार हो चुकी हैं। इन सूचियों के तैयार होने के पश्चात वह जनता की सूचना के लिये भी प्रकाशित की जा चुकी हैं तथा उनमें मतदाताओं की प्रार्थना पर संशोधन भी हो चुके हैं। यह सूचियाँ अब अन्तिम हैं और इन्हीं के आधार पर आगामी चुनाव किये

जायेंगे। इन चुनावों में केवल वही व्यक्ति वोट दे सकेंगे, जिनके नाम इस सूची में दर्ज हैं।

चुनाव होने से कुछ समय पहिले एक तारीख निश्चित की जायगी जिस तारीख तक चुनाव में खड़े होने वाले उम्मीदवारों के लिए यह आवश्यक होगा कि वह अपने निर्देशन पत्र (Nomination Paper) चुनाव अधिकारी के सम्मुख दाखिल कर दें। इन निर्देशन पत्रों में दो ऐसे मतदाताओं के हस्ताक्षर होने चाहिए, जिनमें से एक उम्मीदवार का नाम पेश करे तथा दूसरा उसका अनुमोदन करे। उम्मीदवार की ओर से इस बात की सहमति भी होनी चाहिए कि वह चुनाव में खड़े होने के लिये तैयार है। निर्देशन पत्रों को भरने में बहुत होशियारी से काम लेना चाहिये, क्योंकि तनिक भी गलती रहने पर 'पत्र' अस्वीकार किया जा सकता है।

निर्देशन पत्र दाखिल होने के पश्चात् ७ दिन के अन्दर उनकी जाँच पड़ताल की जाती है जिसमें उम्मीदवार तथा उनके एजेन्ट भाग लेते हैं।

निर्देशन पत्रों के अस्वीकार हो जाने के पश्चात्, तीन दिन के अन्दर उम्मीदवारों को यह अधिकार होता है कि यदि वह चाहें तो अपना नाम वापिस ले लें।

इसके कम से कम ३० दिन पश्चात् आम चुनावों की तिथि निश्चित कर दी जाती है।

आम चुनावों के लिए इस बात का प्रबन्ध किया गया है कि अधिक से अधिक १००० मतदाताओं के पीछे एक चुनाव घर (Polling Booth) अवश्य हो, जिससे मतदाताओं को अधिक दूर तक पैदल न चलना पड़े। नव संविधान के अन्तर्गत, सवारी का प्रबन्ध करना, उम्मेदवारों के लिए निषेध ठहराया गया है। इसलिए वोटदाताओं को अपनी सवारी में या पैदल ही, वोट डालने के लिए आना होगा। सारे भारत में लगभग १,७२,००० चुनाव घरों की व्यवस्था की गई है। इससे किसी मतदाता को राय देने के लिए २ मील से अधिक पैदल न चलना पड़ेगा। इस बात का विचार रखते हुए कि आगामी-चुनाव में ९० प्रतिशत मतदाता बे पढ़े-लिखे होंगे। मत-पत्र पर निशान लगाने की प्रथा का अन्त कर दिया गया है। इसके स्थान पर चुनाव

पेटियों पर विभिन्न उम्मीदवारों के लिए अलग अलग निशान लगाने की प्रथा को अपनाया गया है। चुनाव को जितने उम्मीदवार खड़े होंगे, उतनी ही चुनाव पेटियाँ चुनाव घरों में रखी जायँगी। प्रत्येक चुनाव-पेटा के बाहर और अन्दर किसी ऐसी चीज का निशान होगा जैसे कुटिया, हल, चिड़िया, पेड़, तलवार इत्यादि, जिसे गाँव वाले आसानी से पाहिचान सकें। प्रत्येक उम्मीदवार को पहिले से ही अपना निशान चुन लेना होगा जिससे वह अपने पक्ष के मतदाता को बतला सके कि अमुक निशान वाली पेटी में मत-पत्र को डालना। चुनाव घर में पहुँचने पर प्रत्येक दाता को एक मतपत्र दिया जायगा जिसे वह मोड़कर उस उम्मीदवार की पेटी में डाल सकेगा, जिसे वह अपनी राय देना चाहता है। निशानों के चुनाव के सम्बन्ध में कोई झगड़ा न हो, इसलिए निशान ऐसे स्वीकार किये गये हैं जो वाद विवाद से रहित हों और जिन्हें चुन कर, उम्मीदवार मतदाताओं की भावनाओं को न भड़का सकें।

चुनाव के लिए बहुत से अफसर तथा पुलिस इत्यादि के प्रबन्ध की आवश्यकता पड़ेगी, इसलिये एक ही दिन में समस्त देश के चुनाव समाप्त नहीं होंगे। उनकी समाप्ति के लिए लगभग ७ दिन का समय लग जायगा।

आम चुनावों का प्रबन्ध करने के लिये सरकार को कितना प्रबन्ध करना पड़ा, इसका अनुमान इस बात से हो जायगा कि १८ करोड़ मतदाताओं के लिये ५२ करोड़ मत-पत्र, १६ लाख चुनाव पेटी तथा १२ लाख चुनाव अधिकारियों का प्रबन्ध किया गया है।

चुनाव के पश्चात मत गिन लिए जाते हैं और जिस उम्मीदवार के पक्ष में सबसे अधिक राय पड़ती है, उसे निर्वाचित घोषित कर दिया जाता है। चुनाव में कितनी राय पड़ी हों, यदि किसी उम्मीदवार के पक्ष में, उसमें से $\frac{1}{5}$ राय से कम आती हैं, तो उसकी जमानत जब्त कर ली जाती है। लोकसभा के चुनाव के लिए प्रत्येक उम्मेदवार को ५०० रु० तथा विधान सभा के चुनाव के लिए २५० रु० जमानत के रूप में जमा करने पड़ते हैं।

चुनाव की घोषणा के पश्चात् भी उम्मीदवार की मुसीबतों का अन्त नहीं होता। पश्चात् उसे चुनाव में हुए अपने व्यय का हिसाब सरकार को देना पड़ता है! यह व्यय एक निश्चित रकम से अधिक नहीं होना चाहिए।

हारे हुये उम्मीदवार को यह अधिकार होता है कि यदि वह यह समझें कि चुनाव निष्पक्षता के साथ नहीं लड़ा गया है तथा उसमें भ्रष्ट उपायों को काम में लाया गया है तो वह चुनाव के विरुद्ध एक पैटीशन पेश कर सकते हैं। इस चुनाव पैटीशन (Election Petition) की सुनवाई एक विशेष अदालत के सम्मुख होती है जिसमें यह देखा जाता है कि कहीं चुनाव में अनुचित उपायों से तो काम नहीं लिया गया ? यदि अभियोग साबित हो जायँ तो जीते हुये उम्मीदवार को असफल घोषित कर दिया जाता है, और कभी-कभी भ्रष्टाचार के अपराध में उसे सजा भी दे दी जाती है।

भारत के नये संविधान के अन्तर्गत इसलिए इस प्रकार का प्रबन्ध किया गया है कि चुनाव निष्पक्ष, स्वतंत्र तथा गुप्त (Secret) प्रणाली के आधीन हों जिससे केवल वे ही उम्मीदवार विधान सभाओं में चुने जा सकें जो जनता के सच्चे प्रतिनिधि हों।

लोक सभा की अवधि—लोक सभा की अवधि ५ वर्ष होगी। इस अवधि के समाप्त होने पर 'लोक सभा' स्वयं टूट जायगी। संकटकालीन अवस्था में राष्ट्रपति को लोक सभा की अवधि बढ़ाने का अधिकार दिया गया है, परन्तु किसी भी अवस्था में यह अवधि एक समय में एक वर्ष से अधिक नहीं बढ़ाई जा सकेगी और संकटकालीन स्थिति के समाप्त होने पर छै महीने के अन्दर-अन्दर दूसरी लोक सभा का चुनाव करना होगा।

अधिवेशन—लोक सभा के एक वर्ष में कम से कम दो अधिवेशन अवश्य बुलाए जायेंगे। संविधान में कहा गया है कि एक अधिवेशन की समाप्ति और दूसरे अधिवेशन के आरंभ में ६ महीने से अधिक समय नहीं बीतना चाहिये।

सदस्यों की योग्यता—लोक सभा के केवल वही व्यक्ति सदस्य चुने जा सकेंगे जिनकी आयु कम से कम २५ वर्ष होगी तथा जो भारत के नागरिक होंगे। संसद् को इस बात का अधिकार दिया गया है कि यदि वह चाहे तो लोक सभा के सदस्यों की योग्यता के विषय में कानून बना सकती है। पिछले दिनों इस बात का प्रयत्न किया गया था कि इन योजनाओं का निश्चय

कर दिया जाय, परन्तु संसद् के सदस्यों के बीच यह निश्चय न हो सका कि सदस्यता के लिये न्यूनतम शर्तें क्या रक्खी जायँ।

सदस्यता में बाधक बातें—लोक सभा या राज्य परिषद् के वह व्यक्ति सदस्य न हो सकेंगे जिनमें निम्नलिखित में से कोई भी बात होगी :—

(१) यदि, वह भारत में किसी भी प्रांतीय अथवा केन्द्रीय सरकार के नीचे लाभकारी पद पर नौकर होंगे।

(२) यदि, उनके मस्तिष्क में किसी प्रकार की विकृति होगी।

(३) यदि, उन्होंने किसी दूसरे देश की नागरिकता ग्रहण कर ली होगी।

(४) यदि वह चुनाव सम्बन्धी अपराध में दोषी ठहराये जा चुके होंगे।

(५) यदि उन्हें किसी अनैतिक अपराध में १२ वर्ष से अधिक सजा हो चुकी होगी।

(६) यदि वह सरकारी ठेकेदार होंगे या किसी सरकारी कम्पनी में डाइरेक्टर इत्यादि।

संसद् की सदस्यता के विषय में यदि किसी प्रकार का विवाद होगा तो वह राष्ट्रपति के फैसले के लिये पेश किया जायगा। परन्तु, राष्ट्रपति उस पर अपना निर्णय देने से पहिले इलैक्शन कमिश्नर की राय लेंगे।

स्थान का रिक्तकरण—संविधान की १०१वीं धारा में कहा गया है कि कोई भी व्यक्ति एक समय में राज्य अथवा संघ के अन्तर्गत एक से अधिक धारा सभा का सदस्य नहीं हो सकेगा। यदि कोई व्यक्ति दो या दो से अधिक ऐसे स्थानों के लिये निर्वाचित हो जायगा तो उसे एक को छोड़कर और बाकी सभी स्थानों से त्यागपत्र देना होगा। इसके अतिरिक्त यदि किसी व्यक्ति में निम्नलिखित में से कोई बात हो जाय तो उसका स्थान भी रिक्त समझ लिया जायगा :—

(१) यदि, वह चुनाव के पश्चात् उस पद पर आसीन रहने के अयोग्य हो जाय, उदाहरणार्थ यदि वह सरकारी नौकरी कर ले।

(२) यदि, वह स्वयं अपने पद से त्यागपत्र दे दे।

(३) यदि, वह अपने भवन की बैठकों से ६० दिन से भी अधिक काल के लिये बिना अनुमति अनुपस्थित रहे।

सदस्यों के अधिकार—संसद् के सभी सदस्यों को भाषण की पूर्ण स्वतन्त्रता होगी। कोई भाषण देने या किसी प्रकार का मत प्रकट करने पर किसी संसद् के सदस्य को सजा नहीं दी जा सकेगी। परन्तु यह स्वतन्त्रता संविधान के उप-नियमों और संसद् की चालू आज्ञाओं के आधीन होगी। भाषण स्वतन्त्रता के अतिरिक्त, ससद् द्वारा इस संबंध में अपने नियम बनाने तक, सदस्यों के दूसरे अधिकार, इंगलैंड के हाउस आफ कामन्स के सदस्यों के समान होगे।

लोक सभा के पदाधिकारी—लोकसभा की बैठकों का संचालन करने के लिये विधान में एक अध्यक्ष (Speaker) तथा उपाध्यक्ष (Deputy Speaker) के चुनाव की व्यवस्था की गई है। यह दोनों पदाधिकारी लोक सभा के सदस्यों के बहुमत द्वारा निर्वाचित किये जायेंगे। 'लोक सभा' जब चाहे उन्हें अविश्वास का प्रस्ताव पास करके उनके पद से हटा सकेगी। अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष को वही वेतन दिया जायगा जो संविधान पास होने से पहले केन्द्रीय धारा सभा के अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष को मिलता था। परन्तु संसद् को अधिकार होगा कि वह चाहे तो इस वेतन को घटा-बढ़ा सकती है। लोक सभा के अध्यक्ष का मुख्य कार्य सभा की बैठकों में सभापति का आसन ग्रहण करना, 'लोक सभा' के कार्य का संचालन करना, सदस्यो के अधिकारो की रक्षा करना, बैठक की कार्यवाही के प्रकाशन का उचित प्रबन्ध करना, प्रस्तावों, प्रश्नों एवं बिलों के पेश होने की आज्ञा देना, बहस पर नियन्त्रण रखना तथा 'लोकसभा' सम्बन्धी दूसरे कार्य करना होगा। इंगलैंड के हाउस आफ कामन्स के स्पीकर के समान 'लोक सभा' के लिये यह आवश्यक नहीं होगा कि वह अध्यक्ष पद के लिये केवल ऐसा ही सदस्य निर्वाचित करे जो किसी दल विशेष से अपना सम्बन्ध तोड़ ले। परन्तु उससे यह आशा की जायगी कि वह निष्पक्ष भाव से अपने कार्य का संचालन करे तथा उस समय तक जब तक वह अध्यक्ष की कुर्सी पर विराजमान है, किसी पार्टी विशेष के सदस्यों का पक्ष न ले। अध्यक्ष को केवल उस दशा में राय देने का अधिकार दिया गया है जब किसी विषय पर पक्ष और विपक्ष में बराबर के मत हों। ऐसी दशा में अध्यक्ष अपना एक निर्णायक मत (Cast-

ing Vote) दे सकेगा। अध्यक्ष की अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष उसका कार्य भार सँभालता है।

गणपूर्ति—(Quorum) लोक सभा की कार्यवाही आरंभ करने के लिये सभा में कम से कम १/१० सदस्यों की उपस्थिति आवश्यक होगी।

राज्य परिषद्

सदस्यता—पार्लियामेंट की उच्च सभा का नाम राज्य परिषद् होगा। संविधान में कहा गया है कि इसके सदस्यों की अधिक से अधिक संख्या २५० अर्थात् लोक सभा के सदस्यों की संख्या से आधी होगी। परन्तु अभी संख्या केवल २१७ निश्चित की गई है इनमें से १२ सदस्य राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किये जायेंगे। यह सदस्य ऐसे होंगे जिन्होंने साहित्य, कला, विज्ञान अथवा सामाजिक सेवा के क्षेत्र में विशेष रूप से काम किया हो। बाकी सदस्य संघ के अन्तर्गत राज्यों के प्रतिनिधि होंगे। उनका चुनाव राज्यों के निम्नभवन अर्थात् विधान सभा (Legislative Assembly) द्वारा एकल संक्रमणीय मत (Single Transferable Vote) तथा अनुपाती प्रतिनिधित्व प्रणाली (Proportional Representation) के आधार पर किया जायगा। भिन्न-भिन्न राज्यों से जो २०५ प्रतिनिधि चुने जायँगे उनका विवरण नीचे दिया जाता है :—

विधान लागू होने से पहले के प्रान्त

राज्य का नाम	सदस्यों की संख्या
आसाम	६
उड़ीसा	६
पञ्जाब	८
पश्चिमी बंगाल	१४
बिहार	२१
मध्य प्रदेश	१२
मद्रास	२७
बम्बई	१७
उत्तर प्रदेश	३१
	१४५

विधान लागू होने से पहले की रियासतें

हैदराबाद	११
जम्मू और काश्मीर	४
मध्य भारत	६
मैसूर	६
पटियाला और पूर्वी पंजाब राज्य	३
राजस्थान	६
सौराष्ट्र	४
ट्रावनकोर-कोचीन	६
विंध्य प्रदेश	४
कुल संख्या	५३

विधान लागू होने से पहले के चीफ कमिश्नर के प्रांत तथा रियासतें

अजमेर } कुर्ग	१
भोपाल	१
बिलासपुर } हिमाचल प्रदेश	१
कूच बिहार	१
देहली	१
कच्छ	१
मनीपुर } त्रिपुरा	१
कुल संख्या	७
कुल स्थानों का जोड़	२०५

संसद् को अधिकार होगा कि वह भारतीय संघ के अंतर्गत सम्मिलित होने वाले नये राज्यों के लिये विशेष प्रतिनिधित्व की व्यवस्था कर सके तथा

कुछ राज्यों के दूसरे राज्यों में सम्मिलित होने के कारण सीटों के बँटवारे के सम्बन्ध में उचित परिवर्तन कर सके।

योग्यता—राज्य परिषद् का सदस्य प्रत्येक वह व्यक्ति होगा जिसकी आयु ३० वर्ष से अधिक हो तथा जिसे प्रांतों की विधान सभा चुन ले।

अवधि—राज्य परिषद् एक स्थायी संस्था होगी। परन्तु उसके एक-तिहाई सदस्य प्रति दूसरे वर्ष चुने जायेंगे। इस प्रकार आरम्भ के सदस्यों को छोड़ कर बाकी सदस्यों की अवधि छै वर्ष होगी। राज्य परिषद् के 'लोक सभा' की भाँति एक समय में सीधे चुनाव नहीं होंगे।

पदाधिकारी—राज्यपरिषद् का सभापति (Chairman) जैसा पहले बतलाया जा चुका है, देश का उपराष्ट्रपति होगा जिसका चुनाव दोनों भवनों के सदस्यों द्वारा किया जायगा। उपराष्ट्रपति की अनुपस्थिति में कार्य करने के लिये राज्यपरिषद् एक उपसभापति (Deputy Chairman) भी होगा जिसका चुनाव राज्यपरिषद् के सदस्यों द्वारा ही किया जायगा।

संसद् (पार्लियामेंट) के अधिकार तथा कार्य

संघ के दोनों भवनों अर्थात् लोकसभा और राज्यपरिषद् (Council of State) का संयुक्त नाम संसद् (पार्लियामेंट) होगा। भारत की संसद् को वही अधिकार प्राप्त होंगे जो दूसरे स्वतन्त्र देशों में वहाँ के विधान मंडल (Legislature) को प्राप्त होते हैं। इन अधिकारों में निम्न अधिकार मुख्य हैं :—

(१) देश की व्यवस्था तथा जनता की भलाई के लिये कानून पास करना।

(२) देश की कार्यपालिका अर्थात् मंत्रिमण्डल पर नियंत्रण रखना। यह नियंत्रण, प्रश्नों, प्रस्तावों, बजट में कटौती, अविश्वास तथा काम-रोको प्रस्तावों के द्वारा रखा जाता है। सरकार के प्रत्येक विभाग के साथ निर्वाचित सदस्यों की एक समिति (Standing Committee of the Members of Parliament) भी होती है जो उस विभाग के कार्य, व्यय तथा नीति पर नियंत्रण रखती है।

(३) सरकार की आमदनी और खर्च का देखभाल करना। अनुमान

समिति (Estimates Committee of the Parliament) के द्वारा भी यह काम सम्पादित किया जाता है।

(४) नये टैक्सों को लगाने की स्वीकृति देना अथवा पुराने टैक्सों को कम करना या उन्हें हटा देना।

(५) सरकार की नीति का सञ्चालन तथा राष्ट्र की वैदेशिक नीति का निर्माण करना, दूसरे देशों से युद्ध तथा समझौता इत्यादि करना।

संसद् की शक्तियों पर रोक (Limitations on the Power of Parliament)

परन्तु यहाँ यह समझ लेना आवश्यक है कि संसद् की शक्तियों का क्षेत्र असीमित नहीं है। संसद् संविधान की सीमा के अन्तर्गत रह कर काम करती है। संविधान में उसकी शक्तियों पर निम्न रोक लगाई गई हैं :—

(१) विधायनी शक्ति (Legislative Powers)—सर्व प्रथम संसद् केवल उन्हीं विषयों पर क़ानून बना सकती है जिनका उल्लेख संविधान की संघीय (Federal) एवं समवर्ती (Concurrent) सूची में किया गया है। वह राज्य सूची के विषयों पर क़ानून नहीं बना सकती।

(२) संविधान शक्ति—दूसरे संसद् संविधान में किसी प्रकार का संशोधन उस समय तक नहीं कर सकती जब तक वह संशोधन प्रत्येक सदन के $\frac{2}{3}$ बहुमत से स्वीकार न कर लिया जाय।

(३) तीसरे संसद् का कानून बनाने का अधिकार राष्ट्रपति के उस अधिकार द्वारा सीमित हो जाता है जिसके आधीन राष्ट्रपति किसी विधेयक (Bill) पर उस समय तक हस्ताक्षर करने से इकार कर सकते हैं जब तक वह दोबारा संसद् के प्रत्येक भवन द्वारा बहुमत से स्वीकार न कर लिया जाय।

संसद् के दोनों भवनों का पारस्परिक संबध (Mutual Relations between the two Houses of Parliament)

नव संविधान के आधीन भारतीय संसद् के दोनों भवनों को बराबर के अधिकार प्रदान नहीं किए गये हैं।

रुपये-पैसे संबंधी बिलों पर अधिकार

रुपये-पैसे संबंधी बिलों—के सम्बन्ध में उदाहरणार्थ राज्य परिषद् के

अधिकार अत्यन्त सीमित रक्खे गये हैं। ऐसे बिल, मंत्रियों द्वारा, केवल लोक सभा में ही प्रस्तुत किए जा सकते हैं, राज्य परिषद् में नहीं। यह प्रणाली संसार के सभी प्रजातंत्रवादी देशों में पाई जाती है। कारण निम्नभवन जनता की राय का अधिक प्रतिनिधित्व करता है, और उसके हाथ में रुपये पैसे सम्बन्धी शक्ति देना अधिक लोकतंत्रीय समझा जाता है। विधान में कहा गया है कि रुपये-पैसे सम्बन्धी बिल निम्नभवन अर्थात् लोक सभा द्वारा स्वीकार किये जाने के पश्चात् राज्यपरिषद में विचारार्थ भेज दिये जायेंगे जिसे यह अधिकार होगा कि यदि वह चाहे तो १४ दिन के अन्दर अन्दर उस बिल में कोई संशोधन के सुझाव लोक सभा के सम्मुख पेश कर दे। परन्तु, इन सुझावों को स्वीकार या अस्वीकार करने का अंतिम अधिकार लोक सभा को ही होगा। यदि १४ दिन तक राज्य परिषद 'बिल' के सम्बन्ध में कोई राय लोक सभा को लिख कर न भेजे, तो बिल राज्य परिषद की बिना राय के ही पास हुआ समझा जायगा। इस सम्बन्ध में राज्य परिषद के अधिकार की तुलना हम इंगलैंड के हाउस आफ़ लार्ड्स के अधिकारों से कर सकते हैं, जिसे भी रुपये पैसे सम्बन्धी मामलों में किसी प्रकार के अधिकार प्राप्त नहीं है।

कार्यपालिका पर अधिकार

रुपये पैसे सम्बन्धी बिलों की भाँति ही राज्य परिषद को मंत्रिमंडल के ऊपर नियंत्रण रखने का अधिकार भी प्राप्त नहीं है। संविधान में कहा गया है कि मंत्रिमंडल लोक सभा के प्रति उत्तरदायी होगा, राज्य परिषद के नहीं। निम्नभवन को ही अविश्वास का प्रस्ताव पास करके मंत्रिमंडल को बर्खास्त करने का अधिकार प्राप्त होगा। राज्य परिषद मंत्रियों के कार्य की आलोचना कर सकेगा, तथा प्रश्नों, प्रस्तावों, बजट में कटौती तथा काम रोको प्रस्तावों के द्वारा उनके कार्य की देख-भाल कर सकेगा, परन्तु उसे मंत्रिमंडल का त्याग-पत्र माँगने का कोई अधिकार नहीं होगा। लोक सभा को यह अधिकार इसलिए दिया गया है कि जनता का सच्चा एवं प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व वही भवन करता है, उच्च भवन नहीं।

दूसरे प्रकार के बिलों पर अधिकार

रुपये पैसे सम्बन्धी बिलों तथा मंत्रिमंडल पर नियंत्रण रखने के अतिरिक्त,

और विषयों में दोनों भवनों के अधिकार समान होंगे। उदाहरणार्थ और हर प्रकार के बिल एक भवन द्वारा पास कर लिये जाने के पश्चात् दूसरे भवन के पास भेजे जायेंगे। इस दूसरे भवन को इस बात का अधिकार होगा कि यदि वह चाहे तो ६ महीने के अन्दर अन्दर उस बिल में संशोधन कर दे। इस प्रकार दूसरे भवन द्वारा बिल पर विचार हो जाने के पश्चात् बिल अपने उद्गम स्थान पर वापिस आ जायगा, जहाँ दूसरे भवन द्वारा बिल पर किये गये संशोधन पर फिर से विचार किया जायगा। यदि वह संशोधन स्वीकार कर लिये जाँय तो बिल सीधा राष्ट्रपति के हस्ताक्षर के लिए भेज दिया जायगा। परन्तु, संशोधन के विषय में दोनों भवन आपस में राजी न हो सकें तो राष्ट्रपति को इस बात का अधिकार दिया गया है कि वह दोनों भवनों की एक मिली-जुली सभा बुला ले। इस सभा में निम्न भवन का अध्यक्ष सभापति का आसन ग्रहण करेगा। दोनों भवनों की संयुक्त सभा जिस रूप में भी बिल बहुमत से पास हो जाय वह दोनों भवनों द्वारा पास समझा जायगा और इसके पश्चात् वह राष्ट्रपति के हस्ताक्षर के लिए भेज दिया जायगा। जिस समय कोई बिल राष्ट्रपति के हस्ताक्षर के लिए प्रस्तुत किया जायगा तो राष्ट्रपति निम्न में से कोई भी काम कर सकेंगे :—

(१) बिल पर हस्ताक्षर कर दें।

(२) उसे पार्लियामेंट के विचार के लिए लौटा दें।

दूसरी दशा में यदि पार्लियामेंट उसी बिल को दोबारा पास कर देगी तो राष्ट्रपति को उस पर अवश्य हस्ताक्षर करने पड़ेंगे और वह बिल कानून बन जायगा। परन्तु पहली दशा में संविधान में इस बात का स्पष्टीकरण नहीं किया गया है कि यदि राष्ट्रपति बिल पर हस्ताक्षर करने से मना कर दें तो क्या होगा ? सम्भवतः राष्ट्रपति ऐसा नहीं करेंगे और इस विषय में एक प्रकार की रीति (Convention) के आधीन काम करेंगे।

वार्षिक आय व्यय (बजट) पास करने की विधि—भारत के नये संविधान में संसद् के सदस्यों के बजट पर बहस करने के अधिकार बढ़ा दिये गये हैं। पहिले की भाँति संविधान में राष्ट्रपति को आज्ञा दी गई है कि वह प्रति वर्ष संघ सरकार की आय व व्यय का ब्यौरा संसद के

सदस्यों के सम्मुख पेश करायेंगे। इस ब्यौरे में वह व्यय अलग दिखाया जायगा जिस पर संसद् के सदस्यों को राय देने का अधिकार नहीं होगा, तथा जो भारत व्यय के रूप में संघ सरकार की संचित निधि में से खर्च किया जायगा। इस व्यय में राष्ट्रपति का वेतन तथा उनके दूसरे भत्ते, लोक सभा व राज्य परिषद के पदाधिकारियों का वेतन, सुप्रीम कोर्ट और फ़ेडरल-कोर्ट के जजों की पेंशन, जजों का वेतन, आडिटर जनरल का वेतन, भारत सरकार के ऋण की अदायगी अथवा उसका ब्याज, संघ सरकार के ऊपर किसी कचहरी द्वारा की गई डिग्री की रकम, अथवा कोई ऐसा व्यय जिसे संसद् इस श्रेणी में सम्मिलित कर ले, शामिल होगा। दूसरे सभी खर्चे अलग दिखाये जायेंगे। राजस्व तथा पूँजी सम्बन्धी खर्चे का ब्यौरा भी अलग पेश किया जायगा।

बजट पर राय देने का अधिकार केवल लोक सभा के सदस्यों को होगा, राज्य परिषद के सदस्यों को नहीं। लोक सभा को अधिकार होगा कि वह खरचे की किसी भी रकम में कमी कर दे अथवा उसे बिलकुल अस्वीकार कर दे। परन्तु किसी मद पर खरचे को बढ़ाने अथवा किसी नये खरचे का सुझाव रखने का लोक सभा के सदस्यों को अधिकार नहीं होगा। खरचे के सुझाव राष्ट्रपति की अनुमति से, केवल मंत्रियों द्वारा ही पेश किये जा सकते हैं।

बजट पास हो जाने के पश्चात् फाइनैंस बिल जिसमें कर सम्बन्धी सुझाव, प्रस्तुत किये जाते हैं, लोक सभा के सम्मुख रक्खा जायगा। इस पर भी राज्य परिषद के सदस्यों को राय देने का अधिकार नहीं होगा।

बजट पर बहस करने के लिये, पहिले की भाँति, कोई निश्चित समय मुकर्रर नहीं किया गया है। संविधान पास होने से पहले अर्थ मन्त्री, २८ फरवरी को अपना बजट धारासभा के सम्मुख पेश करते थे। ३१ मार्च इस बजट को पास करने की अन्तिम तिथि थी। नव संविधान के अन्तर्गत संसद् को यह अधिकार दिया गया है कि वह बजट पास होने तक सरकार के लिये स्वीकार कर सकती है। इसके पश्चात् संसद् के सदस्य अपनी सुविधा के अनुसार बजट पर खुली बहस कर सकते हैं। उनके लिये यह आवश्यक

नहीं कि वह किसी निश्चित तिथि तक उसे पास कर दें। एक बार बजट पास कर चुकने के पश्चात् संसद् को यह भी अधिकार होगा कि वह किसी असामयिक खर्चे को पूरा करने के लिये सरकार को और रुपया खर्च करने की स्वीकृति दे दे। इस प्रकार उसे सप्लीमैंटरी बजट पास करने का अधिकार होगा। बजट पास हो चुकने के पश्चात् 'आडिटर जनरल' का यह कर्तव्य होगा कि वह देखे कि सरकार का खर्च बजट में स्वीकृत योजना के अनुसार ही होता है। संसद् के सदस्यों को इस विषय में आडीटर जनरल की वार्षिक रिपोर्ट पर बहस करने का अधिकार भी दिया गया है।

(बिल विधेयक) पास करने को विधि

संसद् में प्रस्तुत बिल दोनों सदनों द्वारा किस प्रकार पास किए जाते हैं तथा दोनों सदनों में उनके विषय में मतभेद हो तो वह कैसे दूर किया जाता है, यह हम पहिले बता चुके हैं। यहाँ हम उस विधि का वर्णन करेंगे जिसके द्वारा कोई बिल एक सदन से पास किया जाता है।

बिल सरकारी भी हो सकते हैं और सदस्यों द्वारा भी प्रस्तुत किए जा सकते हैं। अधिकतर बिल सरकारी ही होते हैं।

प्रत्येक बिल के पास होने से पहिले तीन पढ़त होती हैं। प्रथम पढ़त में बिल छप कर सदस्यों की मेज पर रख दिया जाता है। उस पर किसी प्रकार की बहस नहीं होती।

दूसरी पढ़त में बिल पर विस्तार से बहस होती है, पहिले उसके सिद्धांतों पर और इसके पश्चात् यदि वह स्वीकार कर लिया जाय तो उसकी एक-एक धारा पर इस पढ़त में कई बार बिल सिलेक्ट कमेटी के सुपुर्द कर दिया जाता जिसकी रिपोर्ट पर एक बार फिर पूरा सदन बिल पर बहस करता है। इस पढ़त में बिल में संशोधन भी रक्खे जा सकते हैं। प्रत्येक संशोधिन और फिर मूल धारा पर अलग-अलग सदस्यों की राय ली जाती है।

तीसरी पढ़त में संशोधत बिल पर एक बार फिर बहस होती है परन्तु इस पढ़त में बिल में संशोधन प्रस्तुत नहीं किए जा सकते।

इसके बाद पूरे सदन (Home) की राय ली जाती है और बिल के पास हो जाने पर वह दूसरे सदन में भेज दिया जाता है, जहाँ एक बार फिर

इसी प्रकार तीन पढ़त होती है। दोनों सदनों से पास होने के बाद बिल राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेज दिया जाता है।

योग्यता प्रश्न

(१) सघ संसद् के विशेषाधिकारों तथा शक्तियों का वर्णन कीजिए। क्या समद् संविधान में सशोधन कर सकती है? यदि हाँ तो किस प्रकार? (यू० पी० १९५१)

(२) नये संविधान के अन्तिम आम चुनाव होने तक संघ ससद् का क्या स्वरूप था? क्या इस संसद् को संविधान में संशोधन करने का अधिकार प्राप्त था?

(३) केन्द्रीय शासन में द्वि-सदन प्रणाली क्यों अपनाई गई है? दोनों सदनों की व्यवस्था के सम्बन्ध में वर्णन कीजिये।

(४) वयस्क मताधिकार का सिद्धान्त क्यों स्वीकार किया गया? क्या इससे शासन का स्तर नीचे नहीं गिरेगा?

(५) भारत में संसार का सबसे महान् प्रजातन्त्रीय प्रयोग किया जा रहा है। यह कथन कहाँ तक सत्य है?

(६) संसद् के क्या कर्तव्य हैं? वह कार्यपालिका पर किन उपायों से नियंत्रण रखती है?

(७) संसद् के दोनों भवनों के बीच पारस्परिक सम्बन्ध का विवेचन कीजिए। उन दोनों के बीच की गति में अवरोध किस प्रकार दूर किया जाता है?

(८) संसद् के राजस्व सम्बन्धी अधिकार क्या हैं? बजट किस प्रकार पास किया जाता है?

(९) संसद् में कानून पास करने का क्या तरीका है? क्या राष्ट्रपति संसद् से स्वीकृत विधेयक को मानने से इन्कार कर सकते हैं?

अध्याय ७

राज्यों का शासन प्रबन्ध

जैसा पहिले बताया जा चुका है नव संविधान के अन्तर्गत, शासन की दृष्टि से भारत चार भागों में विभक्त किया गया है। एक भाग में वह राज्य हैं जिनके अध्यक्ष राज्यपाल अर्थात् गवर्नर हैं, दूसरे भाग में वह राज्य हैं जो बहुत सी देशी रियासतों को जोड़ कर बनाये गये हैं तथा जिनके अध्यक्ष राजप्रमुख हैं, तीसरे भाग में वह राज्य हैं जो संघ सरकार के अन्तर्गत चीफ कमिश्नरों द्वारा शासित होते हैं, चौथे भाग में अंडमान नीकोबार द्वीप हैं जिनकी शासन व्यवस्था के लिये संविधान में अलग प्रबंध किया गया है।

संविधान के भाग 'क' और 'ख' में दिये गये राज्यों अर्थात् उन राज्यों की शासन व्यवस्था जिनके अध्यक्ष राज्यपाल अथवा राजप्रमुख हैं, मूल तत्वों में संघ सरकार की शासन व्यवस्था से मिलती-जुलती है। इन राज्यों में उसी प्रकार का मन्त्रिमण्डलात्मक सरकारें संगठित की गई हैं जैसी संघीय संविधान के अंतर्गत सब राज्यों के राज्यपाल केन्द्रीय सरकार के राष्ट्रपति के समान विधाननिष्टा, नामधारी तथा उत्सव मूर्ति अध्यक्ष हैं। शासन की वास्तविक सत्ता सब राज्यों में मन्त्रिमण्डलों के हाथ में रक्खी गई है। सब मन्त्री वैयक्तिक तथा सामूहिक रूप से संघ सरकार भाँति अपनी-अपनी विधान सभाओं के प्रति उत्तरदायी हैं। सब राज्यों के विधान मण्डलों का कार्य करने का तरीका उसी प्रकार का है जैसा संघ संसद् का। उन सब में बजट तथा बिल पास करने की समान विधि है। उन सब के सदस्यों को वही अधिकार प्राप्त हैं जो संघ संसद के सदयों को दिये गये हैं। संसद् की योग्यता सम्बंधी धारायें भी दोनों में एक रूप हैं। इस अध्याय में इसलिये हम राज्यों के केवल उन्हीं अंगों का विस्तार से वर्णन करेंगे जिनमें वह संघीय

संविधान से भिन्नता रखते हैं; शेष अङ्गों का वर्णन केवल संक्षिप्त रूप से किया जायगा।

राज्य कार्यकारिणी (State Executive)

राज्यपाल (Governor)

संविधान की प्रथम अनुसूची के भाग 'क' में दिये गये राज्यों के अध्यक्ष का नाम राज्यपाल अथवा गवर्नर है। जैसा पहिले भी बताया जा चुका है, राज्य के शासन में उसकी स्थिति प्रायः वैसी ही है जैसी संघ संविधान में राष्ट्रपति की। राज्य के सभी काम उसी के नाम पर किये जाते हैं। परन्तु राष्ट्रपति के समान विपत्ति काल में शासन की असाधारण शक्तियों के साथ कार्य करने की उसे शक्ति नहीं दी गई है। वैसे भी राष्ट्रपति जहाँ केवल अपने प्रधान मंत्री अथवा मन्त्रिमंडल की सलाह से कार्य करने के लिये बाध्य हैं, वहाँ राज्यपाल का एक प्रकार से दुहरा उत्तरदायित्व है। वह एक ओर तो राष्ट्रपति तथा संघ सरकार की आज्ञाओं को मानने के लिए बाध्य है, और दूसरी ओर उसे अपने मन्त्रियों की सलाह से काम करना पड़ता है। इस प्रकार राज्यपाल का कार्य कठिनता से खाली नहीं।

नियुक्ति—संविधान में कहा गया है कि राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा अपने स्वयं के हस्ताक्षरों तथा राज्य की मोहर लगा कर की जायगी। उसके कार्यकाल की अवधि ५ वर्ष होगी। पहिले संविधान सभा में यह प्रस्ताव, रक्खा गया था कि राज्यपाल का जनता द्वारा सीधा चुनाव किया जाय अथवा उसे विधान सभा चुने। परन्तु, स्वीकृत संविधान में यह दोनों सुझाव, इसलिये नहीं माने गये कि राज्यपाल को संविधान के अन्तर्गत कोई विशेष अधिकार नहीं दिये गये हैं। जनता द्वारा चुनाव किये जाने पर मन्त्रियों तथा राज्यपाल में संघर्ष की सम्भावना हो सकती थी। कारण, उस दशा में राज्यपाल कह सकता था कि वह भी जनता का वैसा ही प्रतिनिधि है जैसे मन्त्री, और इस लिये जनता के हित की रक्षा के लिये उसे मन्त्रियों के काम में हस्तक्षेप करने का अधिकार है। विधान-मंडल द्वारा चुनाव में यह दोष समझा गया कि इससे राज्यपाल का चुनाव एक दलबन्दी के फेर में पड़ जाता और उसे राज्य के सभी नागरिकों का विश्वास प्राप्त नहीं होता। राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल का

चुनाव होने से यह स्थिति उत्पन्न नहीं होगी। वह केवल ऐसे ही व्यक्तियों को इस पद के लिये चुनेंगे जो जनता के विश्वासपात्र हों तथा जिन्होंने अपने नैतिक बल, योग्यता, अनुभव अथवा जनता की स्वार्थहीन सेवा से समाज में विशेष मान पाया हो। इस विधि से राज्य के शासन पर संघीय सरकार का प्रभुत्व भी बढ़ जायगा। अमरीका के संविधान में राज्यों के गवर्नरों का चुनाव जनता द्वारा किया जाता है। वहाँ यह प्रथा इसलिये क्षम्य है कि उस देश के संविधान के अन्तर्गत गवर्नर राज्यों के विधाननिष्ठ अध्यक्ष नहीं वरन् कार्यकारिणी के वास्तविक नेता हैं। हमारे संविधान में राज्यपालों के हाथ में इस प्रकार के अधिकार नहीं दिये गये हैं। इसलिये उनका जनता द्वारा चुना जाना अधिक उपयुक्त नहीं होता।

योग्यता—राज्यपाल के पद के लिये वह सभी व्यक्ति चुने जा सकेंगे, जो, (१) भारत के नागरिक हों, (२) जिनकी आयु ३५ वर्ष से अधिक हो, (३) जो संघ संसद् अथवा किसी राज्य के विधान मंडल के सदस्य नहीं हों। यदि ऐसे कोई व्यक्ति इस पद के लिये चुन लिये जायेंगे तो उनका पहिला स्थान तुरन्त रिक्त समझा जायगा।

त्यागपत्र—राज्यपाल को अधिकार होगा कि यदि वह चाहे तो राष्ट्रपति के नाम पत्र लिख कर अपनी अवधि पूर्ण होने से पहिले ही, अपने पद से त्यागपत्र दे दे, अन्यथा अवधि समाप्त होने पर भी वह अपने पद पर उस समय तक आसीन रहेगा जब तक उसके स्थान पर दूसरे व्यक्ति की नियुक्ति न कर दी जाए।

वेतन—प्रत्येक राज्य के राज्यपाल को ५,५०० रुपया मासिक वेतन मिलेगा। इसके साथ ही उसे वह दूसरी सुविधाएँ, रहने के लिये मकान, तथा भत्ते इत्यादि दिये जायेंगे जो विधान लागू होने से पहिले गवर्नरों का दिये जाते थे।

राज्यपालों के अधिकार

राज्यपालों को कानून सम्बन्धी, शासन सम्बन्धी तथा न्याय सम्बन्धी जो विशेष अधिकार दिये गये हैं उनका संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया जाता है :—

कानून संबंधी अधिकार—(१) राज्यपाल को यह अधिकार है कि वह

विधान मंडल के अन्तर्गत दोनों भवनों या किसी एक भवन के अधिवेशन को बुलाये, स्थगित करे अथवा अवधि पूर्ण होने से पहिले ही विधान सभा को भंग कर दे। (२) उसे विधान मंडल के अन्तर्गत दोनों भवनों के संयुक्त अधिवेशन बुलाने, तथा उनमें भाषण देने का अधिकार है। (३) प्रत्येक नये अधिवेशन के समय उसे आज्ञा दी गई है कि वह विधान-मंडल के संयुक्त अधिवेशन में राज्य नीति पर भाषण देगा जिसके पश्चात् विधान मंडल के सदस्य उस पर बहस करेंगे। (४) वह किसी भवन के विचारार्थ अपनी ओर से लिखित सन्देश भी भेज सकेगा, जिस पर उस भवन के सदस्यों को शीघ्र से शीघ्र विचार करना होगा। (५) विशेष अवस्था में जब राज्य के विधान-मंडल की बैठक न हो रही हो तो उसे अधिकार होगा कि किन्हीं ऐसे विषयों पर जो राज्य की अधिकार सीमा में हैं, वह किसी संकट का निवारण करने के लिये अल्पकालीन कानून (Ordinance) पास कर सके। ऐसे कानून विधान मंडल का अधिवेशन आरंभ होने के तुरन्त पश्चात् उसके विचारार्थ पेश किये जायेंगे। और ६ सप्ताह के बाद लागू न रहेंगे जब तक इससे पहिले ही वह विधान-मंडल की सभा द्वारा अस्वीकार घोषित न कर दिये जायँ। (६) विधान-मंडल द्वारा पास कोई भी बिल उस समय तक कानून का रूप धारण नहीं कर सकेगा जब तक राज्यपाल द्वारा उस पर हस्ताक्षर न कर दिये जायँ। जिस समय कोई बिल राज्य की विधान-सभा और यदि उस राज्य में दो भवन हैं तो दोनों भवनों द्वारा पास कर दिया जायगा तो वह राज्यपाल के हस्ताक्षर के लिए भेजा जायगा। राज्यपाल को यह अधिकार होगा कि वह उस बिल पर हस्ताक्षर कर दें, या उसे विधान-मंडल के दोबारा विचार के लिये वापस कर दें। दूसरी दशा में यदि विधान-सभा उसी बिल को दोबारा पास कर देगी, तो राज्यपाल को उस पर हस्ताक्षर अवश्य करने पड़ेंगे।

शासन संबंधी अधिकार—राज्यपाल को इस बात का अधिकार होगा कि वह अपने मन्त्रियों को आदेश दे सके कि सरकार के सभी नीति सम्बन्धी विषय तथा आवश्यक निर्णय उसकी जानकारी के लिये, उसके पास भेजे जायँ। विधान में कहा गया है कि प्रत्येक राज्य के मुख्य मन्त्री का यह कर्तव्य होगा कि वह राज्यपाल को सरकार के सभी कामों से परिचित रक्खे। राज्य-

पाल को यह अधिकार होगा कि यदि किसी विषय पर कोई मन्त्री अपनी स्वतन्त्र इच्छा से, पूरे मन्त्रिमंडल की सलाह के बिना कार्य कर डाले तो वह उस विषय के मन्त्रिमंडल के सम्मुख स्वयं रख दे। राज्य में बहुत से बड़े बड़े सरकारी कर्मचारी, जैसे पब्लिक सर्विस कमीशन के सदस्य, ऐडवोकेट जनरल, इत्यादि की नियुक्ति भी; मन्त्रियों की सलाह पर राज्यपाल द्वारा ही की जायगी। यह सच है कि राज्यपाल शासन सम्बन्धी विषयों पर अपने मन्त्रियों की सलाह से ही कार्य करेगा, परन्तु उसका शासन पर प्रभाव बहुत कुछ उसके अपने व्यक्तित्व, योग्यता तथा अनुभव पर निर्भर होगा। नये विधान के अन्तर्गत राष्ट्रपति केवल ऐसे ही व्यक्तियों को राज्यपाल के पद के लिये चुनेंगे जो अपनी जन-सेवा, दक्षता या बुद्धि के चमत्कार के कारण समाज में ऊँचा स्थान रखते हों। स्वभाविकतः ऐसे व्यक्तियों का शासन पर समुचित प्रभाव होगा।

न्याय संबंधी अधिकार—नये विधान के अन्तर्गत राज्यपाल को सजा पाये हुये अपराधियों की सजा कम करने या उन्हें क्षमा-दान देने का अधिकार दिया गया है। परन्तु, ऐसा वह केवल उस दशा में कर सकेंगे जब अपराधी ने कोई ऐसा कानून तोड़ा हो जिसे बनाने का अधिकार राज्य की विधान सभा को हो। मृत्यु-दंड को स्थगित करना अथवा ऐसे अपराधियों को क्षमा करना जिन्होंने संघ कानून को तोड़ा हो, राष्ट्रपति का ही काम होगा, राज्य-पाल का नहीं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नये संविधान के अन्तर्गत राज्यपालों को राज्य का वैधानिक अध्यक्ष तो अवश्य बनाया गया है, परन्तु फिर भी अपनी योग्यतानुसार, शासन पर अपने व्यक्तित्व की छाप लगाने के लिये उन्हें अनेक अवसर दिए गए हैं।

मन्त्रिमंडल

राज्य का नामधारी अध्यक्ष तो राज्यपाल होगा, परन्तु वास्तविक शक्ति मन्त्रिमंडल के हाथ में रहेगी। मन्त्रियों का चुनाव मुख्य मन्त्री द्वारा किया जायगा। मुख्य मन्त्री वह व्यक्ति होगा जो राज्य की विधान सभा में बहुमत दल का नेता होगा।

संख्या—मन्त्रियों को कोई निश्चित संख्या नहीं होगी। राज्य की आर्थिक अवस्था तथा सरकार के काम की उचित व्यवस्था की दृष्टि से मुख्य मन्त्री, उतने मंत्रियों की नियुक्ति करेगा, जितना वह उचित समझेगा।

अवधि—मंत्रियों के कार्यालय की कोई विशेष अवधि नहीं होगी। वह विधान सभा के प्रति उत्तरदायी होंगे और यदि विधान-सभा उनके प्रति अविश्वास का प्रस्ताव पास कर दे तो उन्हें अपने पद से त्याग-पत्र देना होगा। इस प्रकार मंत्री केवल उस समय तक ही अपने आसन पर विद्यमान रहेंगे, जब तक उन्हें विधान-सभा का विश्वास प्राप्त रहेगा।

योग्यता—मंत्री-पद की नियुक्ति के लिये विधान-सभा का सदस्य होना आवश्यक है। कोई भी बाहर का व्यक्ति ६ महीने से अधिक काल के लिये मन्त्री-पद के लिये नहीं चुना जा सकेगा। यदि इस बीच ऐसा व्यक्ति विधान सभा में निर्वाचित न हो सकेगा तो ६ महीने के पश्चात् उसे अपने पद से त्यागपत्र दे देना होगा।

कार्य प्रणाली—मंत्रियों में काम का बँटवारा मुख्य मन्त्री द्वारा किया जायगा। प्रत्येक मन्त्री एक या एक से अधिक सरकारी विभागों का अध्यक्ष होगा। उदाहरणार्थ, यदि किसी मन्त्री के पास पुलिस विभाग है तो दूसरे के पास अर्थ विभाग इत्यादि। मंत्रियों के नीचे, उनके कार्य में सहायता देने के लिये पार्लियामेंटरी सेक्रेटरी भी नियुक्त किये जा सकते हैं। इनकी नियुक्ति भी मुख्य मन्त्री द्वारा की जायगी।

मन्त्रियों के कर्त्तव्य

मन्त्रियों का मुख्य काम अपने विभाग के अधीन सभी अफसरों के काम की देखभाल करना होगा। शासन का दिन प्रति दिन का काम उन्हीं के द्वारा चलाया जायगा। उनके रहने के लिये बंगला, सवारी के लिये मोटर तथा इतना वेतन दिया जायगा जितना विधान-सभा द्वारा निश्चित कर दिया जाय। जिस समय पक नये चुनाव न हो, उन्हें वही वेतन मिलता रहेगा जितना संविधान के पास होने से पहिले उस प्रांत के मन्त्रियों को मिलता था। अपने महकमें की नीति का निश्चय करना, जन-सेवा के लिये नई नई योजनाएँ सोचना, अपने नीचे दफ्तर का इस प्रकार संगठन करना कि सरकारी काम

अत्यन्त दक्षता तथा योग्यता से चल सके, विधान-मंडल के सम्मुख अपने कार्यों को समझना, सदस्यों के प्रश्नों का उत्तर देना, अपने महकमे से संबंधित बिलों को प्रस्तुत करना, बजट पर बहस का उत्तर देना तथा सदस्यों द्वारा की गई अपने विभाग की आलोचना का उत्तर देना, मन्त्रियों का मुख्य कार्य होगा। वैसे तो सभी मन्त्री अलग-अलग अपने-अपने महकमों के दिन प्रति दिन के काम की देख-भाल करेंगे और किसी एक मन्त्री को दूसरे के कार्य-क्षेत्र में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं होगा, परंतु, नीति सम्बन्धी विषयों का निश्चय सभी मंत्री मिल कर करेंगे। मंत्रिमंडल की बैठकें बराबर होती रहेंगी और उनमें मुख्य मन्त्री सभापति का आसन ग्रहण करेंगे। सभी मन्त्री वैयक्तिक तथा सामूहिक रूप से विधान-सभा के प्रति उत्तरदायी होंगे। यदि किसी एक मन्त्री के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास हो जाय तो केवल वही मन्त्री त्यागपत्र नहीं देगा वरन् सारे मन्त्रिमंडल को ही अपना स्थान छोड़ देना होगा। मुख्य मन्त्री स्वयं भी यदि चाहे तो किसी एक मन्त्री को उसके पद से हटा सकेगा। इस प्रकार सभी मन्त्री मुख्य मन्त्री तथा विधान-सभा—दोनों के प्रति उत्तरदायी होंगे और राज्य की वास्तविक शक्ति उन्हीं के हाथों में केन्द्रित रहेगी।

पिछड़ी हुई जातियों की सहायता के लिये मन्त्रियों की नियुक्ति—संविधान में कहा गया है कि बिहार, उड़ीसा तथा मध्य प्रदेश में मुख्य मन्त्री द्वारा एक ऐसे मन्त्री की भी नियुक्ति की जायगी जिसका मुख्य कार्य जन जातियों (Tribal people) तथा अन्य पिछड़ी हुई जातियों के अधिकारों की रक्षा करना होगा। दूसरे प्रान्तों में भी हरजनों के हितों की रक्षा करने के लिये किसी एक मन्त्री को विशेष अधिकार दिये जा सकते हैं। नये संविधान में राज्यों की सरकारों को विशेष रूप से आदेश दिया गया है कि वह अपने अन्तर्गत पिछड़ी हुई जातियों को समाज के दूसरे व्यक्तियों के समान उन्नति के स्तर पर लाने के लिये विशेष प्रयत्न करें।

ऐडवोकेट जनरल—मन्त्रियों के अतिरिक्त राज्यों के विधान में एक ऐडवोकेट जनरल की नियुक्ति की भी व्यवस्था की गई है। यह नियुक्ति मुख्य मन्त्री की सलाह से गवर्नर द्वारा की जायगी। ऐडवोकेट जनरल का मुख्य

काम राज्य की सरकार को कानून सम्बन्धी विषयों पर सलाह देना तथा राज्य के विरुद्ध मुकदमों, इत्यादि में सरकार की ओर से पैरवी करना होगा। उसके वेतन तथा कार्य-अवधि का निश्चय राज्यपाल द्वारा किया जायगा।

नये चुनाव होने तक राज्यों की सरकारों का शासन

संविधान की ३८४वीं धारा में कहा गया है कि नये चुनाव होने तक राज्यों में वही मन्त्रिमंडल कार्य करते रहेंगे जो संविधान लागू होने से पहिले उन प्रांतों में काम करते थे। इस धारा में पार्लियामेंटरी सेक्रेटरियों की नियुक्ति का कोई उल्लेख नहीं किया गया है। इसीलिये जब २६ जनवरी, सन् १९५० के पश्चात् नव विधान भारत में लागू हुआ तो राज्यों में मन्त्रियों ने तो अपने पद की शपथ ग्रहण कर ली, परन्तु पार्लियामेंटरी सेक्रेटरियों की नियुक्ति न की जा सकी। इसीलिये राज्यों की विधान सभाओं को उनकी नियुक्ति के लिये विशेष कानून बनाना पड़ा।

हमारे अपने राज्य उत्तर प्रदेश में आजकल निम्न मन्त्री काम करते हैं। वह जिस जिस विभाग के अधिकारी हैं उसका ब्यौरा उनके नाम के सम्मुख दिया गया है :—

सर होमी मोदी—राज्यपाल (गवर्नर)

मंत्रिमंडल

पं० गोविंद वल्लभ पंत	प्रधान मन्त्री–शासन-प्रबंध मन्त्री
माननीय हाफिज मोहम्मद इब्राहीम	नहर, यातायात तथा पी० डब्ल्यू० डी० मन्त्री
” श्री संपूर्णानन्द	अर्थ, श्रम तथा शिक्षा-मन्त्री
” श्री हुकुम सिंह	राजस्व तथा जंगलात मन्त्री
” श्री निसार अहमद शेरवानी	कृषि मन्त्री
” श्री आत्माराम गोविंद खेर	स्व-शासन विभाग मन्त्री
” श्री चन्द्रभान गुप्त	स्वास्थ्य तथा रसद मन्त्री
” श्री लालबहादुर शास्त्री	पुलिस मन्त्री
” श्री केशवदेव मालवीय	विकास तथा उद्योग मन्त्री

,,	श्री गिरधारीलाल	जेल तथा उत्पादन कर मन्त्री
,,	श्री चरण सिंह	न्याय तथा सूचना मन्त्री
,,	श्री प्यारेलाल बनरजी	ऐडवोकेट जेनरल

२. भाग 'ख' के राज्यों की कार्यकारिणी का संगठन अर्थात् रियासती संघों की सरकार का स्वरूप

रियासती संघों की सरकार का संगठन उसी प्रकार का होगा जैसा वह 'क' भाग के राज्यों का है। अंतर केवल इतना है कि 'क' राज्यों के अध्यक्ष राज्यपाल कहलाते हैं और 'ख' भाग के अध्यक्ष राजप्रमुख। उनकी नियुक्ति संघ सरकार और रियासती संघों के बीच हुये समझौते के अनुसार की गई है। इन समझौतों का विस्तृत वर्णन 'भारतीय रियासतें' नामक एक अगले अध्याय में किया जायगा। यहाँ हम केवल इन संघों की सरकार के संगठन का वर्णन करेंगे।

'ख' राज्यों के अन्तर्गत मन्त्रिमंडलों का सङ्गठन उसी प्रकार किया जाता है जैसे 'क' राज्यों में। इन राज्यों में राजप्रमुख मुख्य मन्त्री की नियुक्ति करते हैं। शेष मन्त्री मुख्य मन्त्री द्वारा मनोनीत किये जाते हैं। इनमें से जिन राज्यों में विधान सभाएँ हैं वहाँ के मन्त्री विधान सभा के प्रति उत्तरदायी हैं, शेष राज्यों में वह केवल राजप्रमुख के प्रति उत्तरदायी हैं।

रियासती संघों के ऊपर संविधान की एक विशेष धारा ३७१ के द्वारा संघ सरकार का विशेष नियन्त्रण कायम कर दिया गया है। इस धारा में कहा गया है कि पहिले दस वर्ष के लिये 'ख' राज्य की प्रत्येक सरकार संघ सरकार के नियंत्रण में रहेगी और उन्हें राष्ट्रपति की उन सभी आज्ञाओं का पालन करना पड़ेगा जो संघ सरकार की ओर से वह उनके नाम जारी करें। परन्तु, आगे चल कर इस धारा में कहा गया है कि संघ संसद् को इस बात का अधिकार होगा कि वह दस वर्ष की इस अवधि में कमी या बढ़ोत्तरी कर दे या किसी एक या अधिक राज्यों के लिये इस धारा का उपयोग न करे। इस प्रकार का प्रबन्ध संविधान में इस दृष्टि से किया गया है कि भारतीय रियासतों को अभी प्रजातंत्रीय शासन का अधिक अनुभव नहीं है

और उनमें से बहुत सी रियासतों में अभी तक किसी प्रकार की विधान सभाएँ भी नहीं हैं। जिन रियासतों को प्रजातंत्रीय शासन का अधिक अनुभव है वहाँ संविधान की उपरोक्त धारा से उन पर संघ सरकार का नियंत्रण कम किया जा सकता है।

कुछ रियासती संघों के विषय में विशेष आयोजन

संविधान में कुछ रियासती संघों की विशेष परिस्थितियों का विचार करके उनके सम्बन्ध में खास आयोजन किया गया है। उदाहरणार्थ—

काश्मीर रियासत—काश्मीर व जम्मू की रियासत के सम्बंध में संविधान की ३७०वीं धारा में कहा गया है कि संघ-सरकार का इस रियासत पर नियंत्रण केवल उन विषयों पर रहेगा जो विषय उसके भारतीय संघ में प्रवेश के समय 'प्रवेश पत्र' (Instrument of accession) में वर्णित कर दिये गये थे, शेष विषयों पर नहीं। इसका अर्थ यह हुआ कि भारत सरकार 'विदेशी सम्बंध', 'रक्षा', तथा 'यातायात के साधनों' को छोड़ कर और किसी विषय पर काश्मीर व जम्मू की रियासत पर अपना अधिकार न रख सकेगी। परन्तु साथ ही संविधान में यह प्रबन्ध भी कर दिया गया है कि यदि काश्मीर रियासत की अपनी संविधान सभा भारत सरकार को कुछ और विषयों पर नियंत्रण प्रदान करना चाहे तो उसके लिये राष्ट्रपति उचित व्यवस्था कर सकेंगे।

काश्मीर की समस्या अभी तक राष्ट्र-संघ के विचाराधीन है। उसके भारत में प्रवेश के सम्बन्ध में अभी तक कोई अंतिम निश्चय नहीं हुआ है। इसलिये उस रियासत की विशेष परिस्थिति का विचार रखते हुये, संविधान में खास आयोजन किया गया है।

ट्रावनकोर रियासत—काश्मीर के अतिरिक्त, ट्रावनकोर रियासत के सम्बन्ध में भी संविधान की २३८वीं धारा में एक विशेष प्रबन्ध किया गया है। इस धारा में कहा गया है कि ट्रावनकोर और कौचीन संघ की सरकार को प्रति वर्ष "देवास्वम निधि" के नाम से ५१ लाख रुपया दिया जायगा। इस रकम को देने का निश्चय उस समय किया गया था जब ट्रावनकोर और कोचीन रियासतों का एक संघ बना था। इस रकम से ट्रावनकोर की

रियासत उस राज्य मंदिर का प्रबन्ध कर सकेगी जिसके देवता के नाम में कहा जाता है कि उसके राजा रियासत पर शासन करते हैं।

मध्य भारत संघ—इसी प्रकार मध्य भारत संघ के विषय में भी, संविधान में कहा गया है कि उस राज्य के मन्त्रिमंडल में एक ऐसे मन्त्री की नियुक्ति की जायगी जिसका मुख्य काम जन प्रदेशों (Tribal Areas) के लोगों की सुविधा का ध्यान रखना होगा। मध्य भारत की रियासतों में पिछड़े हुए इलाके हैं जहाँ की जनता अभी तक वर्तमान युग की सभ्यता के वातावरण से कोसों दूर है। इन्हीं लोगों की भलाई के लिये संविधान में विशेष आयोजन किया गया है।

मैसूर रियासत—अंत में संविधान में कहा गया है कि मैसूर रियासत को छोड़ कर 'ख' सूची के और सभी राज्यों में एक-भवनात्मक विधान मंडल का निर्माण किया जायगा। मैसूर में इसके विपरीत दो 'भवन' होंगे।

आजकल सभी रियासती संघों में संविधान लागू होने से पहिले की विधान सभाएँ तथा मन्त्रिमंडल कार्य कर रहे हैं। नये चुनाव होने तक यही व्यवस्था लागू रहेगी। इन सब संघों की सरकार जैसा पहिले बतलाया जा चुका है, आजकल संघ-सरकार के निरीक्षण तथा नियंत्रण में कार्य करती है।

३. राज्य विधान मंडल (State Legislature)

नये संविधान के अंतर्गत चुनाव होने तक राज्यों में विधान मंडल का स्वरूप

संविधान की ३८५वीं धारा में कहा गया है कि जिस समय तक नये संविधान के अंतर्गत वयस्क मताधिकार के आधार पर चुनाव नहीं हो जाते राज्यों में पहिली विधान सभाएँ ही कार्य करती रहेंगी और उन्हें वह सभी अधिकार प्राप्त होंगे जो नये संविधान में राज्यों के विधान मंडलों (Legislature) को दिये गये हैं।

आजकल भारत के विभिन्न प्रांतों में विधान-मण्डलों का स्वरूप इस प्रकार है :—

दो भवन—बम्बई, मद्रास, उत्तर प्रदेश और बिहार में संविधान मण्डलों

के अन्तर्गत दो भवन हैं, जिनमें निचले भवन का नाम विधान सभा तथा उच्च भवन का नाम विधान परिषद् है।

एक भवन—शेष प्रांतों अर्थात् पंजाब, मध्य प्रदेश, आसाम, बंगाल और उड़ीसा में केवल एक भवन है जिसे विधान सभा कहते हैं। बंगाल तथा आसाम में पहले दो भवन थे। विभाजन के पश्चात् उनमें केवल एक भवन कर दिया गया है।

विधान परिषदों में सदस्य संख्या—उच्च भवन के अन्तर्गत विभिन्न प्रांतों में सदस्य-संख्या इस प्रकार है :—

प्रांत का नाम	सदस्य-संख्या
मद्रास	५६
बम्बई	३०
उत्तर प्रदेश	६०
बिहार	३०

विधान सभाओं में सदस्य संख्या

प्रांत का नाम	सदस्य संख्या
मद्रास	२१५
बम्बई	१७५
पश्चिमी बंगाल	८४
उत्तर प्रदेश	२२८
पंजाब	७६
बिहार	१५२
मध्य प्रदेश	११२
आसाम	७१
उड़ीसा	६०

उपरोक्त वर्णित कुछ प्रांतों में रियासतों के समाहार के कारण सदस्यों की संख्या में कुछ बढ़ोत्तरी कर दी गई है। ऐसा इसलिए किया गया है जिससे उन रियासतों के प्रतिनिधियों को विधान सभा में मनोनीत किया जा सके जो उस प्रांतों के अन्तर्गत मिला दी गई है।

विधान सभाओं में १६३५ के संविधान के अन्तर्गत हिंदू, मुसलमान, सिख, ईसाई, ऐंग्लो इण्डियन इत्यादि सभी जातियों को पृथक निर्वाचन प्रणाली के आधीन प्रतिनिधित्व दिया गया था। इन प्रतिनिधियों का चुनाव सन् १६४५ के अन्तिम मास में किया गया था। उस समय भारत की केवल १३ प्रतिशत जनता को मत देने का अधिकार था। इन चुनावों में उत्तर प्रदेश में भिन्न-भिन्न जातियों को इस प्रकार प्रतिनिधित्व मिला।

उत्तर प्रदेश की विधान सभा का संगठन

हिन्दू	१२०
हरिजन	२०
मुसलमान	६४
ऐंग्लो इण्डियन	१
ईसाई इत्यादि	४
व्यापारी	३
जमींदार	६
विश्वविद्यालय	१
मजदूरों के प्रतिनिधि	३
स्त्रियाँ	६
कुल संख्या	२२८

उत्तर प्रदेश की विधान परिषद का संगठन—इसी प्रकार उत्तर प्रदेश की विधान परिषद में आजकल कुल सदस्यों की संख्या ६० है। इनमें विभिन्न जातियों का प्रतिनिधित्व इस प्रकार है :—

हिंदू	३४
मुसलमान	१७
यूरोपियन	१
गवर्नर द्वारा मनोनीत	८
कुल संख्या	६०

नये संविधान के अंतर्गत राज्यों के विधान मंडलों का स्वरूप

संघ संविधान की भाँति नये विधान के अन्तर्गत प्रत्येक राज्य में एक विधान-मंडल होगा जिसमें राज्यपाल या राजप्रमुख और कुछ राज्यों में दो भवन—विधान सभा और विधान परिषद—तथा कुछ में एक अर्थात् विधान सभा होगी।

दो भवन—संविधान में कहा गया है कि बिहार, बंबई, मद्रास, पंजाब, उत्तर प्रदेश, पश्चिमी बंगाल तथा मैसूर के विधान-मंडल के अंतर्गत दो भवन होंगे। इनमें से निम्न भवन का नाम विधान सभा तथा उच्च भवन का नाम विधान परिषद् होगा। शेष राज्यों में केवल एक ही भवन होगा, जिसका नाम विधान सभा होगा।

संविधान सभा के बहुत से सदस्य राज्यों के अन्तर्गत द्विभवन प्रणाली के विरुद्ध थे। वह कहते थे कि उच्च भवन से कोई विशेष लाभ न होगा। और व्यर्थ में राज्यों की सरकारों का खर्चा बढ़ जायगा परन्तु फिर भी कुछ प्रांतों के प्रतिनिधियों ने यह बात नहीं मानी। कारण, वह समझते थे कि वयस्क मताधिकार के अन्तर्गत, नये चुनावों में ऐसे व्यक्ति, विधान सभा में चुने जा सकते हैं, जिन्हें शासन का कोई अनुभव न हो और जो लम्बी-चौड़ी बातें बना कर तथा मतदाताओं को बहका कर, उनसे राय प्राप्त कर लें। इसलिये उन्होंने अपने राय के लिये दो भवनों की माँग की, जिससे उच्च भवन में ऐसे लोगों को प्रतिनिधित्व दिया जा सके, जो अपनी शिक्षा, योग्यता तथा अनुभव के कारण कानून बनाने के कार्य में अधिक योग्यता रखते हों तथा जो निम्न भवन के कार्य की शासन की कुशलता की दृष्टि से देखभाल कर सकें।

फिर भी, उन लोगों की राय मानकर जो दूसरे भवन की प्रथा को अप्रजातन्त्रवादी समझते हैं, संविधान में कहा गया है कि यदि कोई राज्य बाद में उच्च भवन की प्रथा पसंद नहीं करे तो उस राज्य की विधान सभा को यह अधिकार होगा कि वह दो-तिहाई बहुमत से उच्च भवन तोड़ देने का प्रस्ताव पास कर दे। ऐसा प्रस्ताव पास होने पर संसद् को यह अधिकार दिया गया है कि वह ऐसे राज्य में उच्च भवन को तोड़ दे। ऐसे राज्यों में जहाँ अभी तक उच्च भवन का प्रबंध नहीं किया गया है, वहाँ पर भी संसद्

को अधिकार दिया गया है कि यदि ऐसा राज्य चाहे तो वह अपनी विधान सभा के दो-तिहाई बहुमत से ऐसा प्रस्ताव पास करा कर संसद् के पास भेज सकता है। यह प्रस्ताव आने पर संसद् उस प्रांत के लिये दूसरे भवन की व्यवस्था कर देगी।

विधान सभा

संघ शासन की भाँति राज्यों में भी निम्न अर्थात् विधान सभा की सत्ता राज्यों के कार्य में सर्वोपरि होगी।

सदस्य संख्या—विधान सभा के सदस्यों की संख्या प्रत्येक राज्य में अलग अलग होगी। अधिक से अधिक ७५ हजार की जनसंख्या पर एक सदस्य विधान सभा में चुना जा सकेगा। परन्तु आसाम राज्य में जहाँ कबायली क्षेत्रों की जनसंख्या बहुत कम है, यह नियम लागू नहीं होगा।

जन प्रतिनिधित्व विधि के आधीन जो भारतीय संसद् द्वारा ६ जून सन् १९५१ को पास किया गया, विभिन्न राज्यों की विधान सभाओं की सदस्य संख्या इस प्रकार निश्चित की गई है :—

नाम राज्य	सदस्य संख्या
आसाम	१०८
बिहार	३३०
बंबई	३१५
मध्य प्रदेश	२३२
मद्रास	३७५
उड़ीसा	१४०
पंजाब	१२६
उत्तर प्रदेश	४३०
पश्चिमी बंगाल	२३८
हैदराबाद	१७५
मध्यभारत	९९
मैसूर	९९
पूर्वी पंजाब रियासती संघ	६०

राजस्थान	१६०
सौराष्ट्र	६०
ट्रावनकोर-कोचीन	१०८

उपरोक्त सदस्य संख्या में वह सदस्य सम्मिलित नहीं होंगे जो संविधान की ३३३वीं धारा के आधीन राज्यपालों द्वारा ऐंग्लो इण्डियन जाति के लोगों को प्रतिनिधित्व प्रदान करने के लिये मनोनीत कर दिये जायँगे। सब राज्यों में हरिजनों के लिए सुरक्षित स्थानों की संख्या ४४३ तथा जन जातियों के लिए सुरक्षित स्थानों की संख्या १६० होगी।

वयस्क मताधिकार—चुनाव में प्रत्येक ऐसे व्यक्ति को राय देने का अधिकार होगा जिसकी आयु २१ वर्ष से अधिक होगी तथा जो जन्म से मूर्ख अथवा उन्मत्त, दिवालिया एवं किसी भयंकर अपराध या चुनाव सम्बन्धी मामले में सजा पाया हुआ अपराधी नहीं होगा। उपरोक्त वर्णित बिल में कहा गया है कि प्रत्येक ऐसा व्यक्ति जो पहिली मार्च सन् १९५० को २१ वर्ष की आयु प्राप्त कर चुका है, राज्य की विधान सभा के लिये मतदाता हो सकेगा; परन्तु उसे मत देने का अधिकार केवल एक ही चुनाव क्षेत्र में मिल सकेगा, एक से अधिक में नहीं।

नये विधान में पृथक निर्वाचन प्रणाली तथा हरिजन और पिछड़ी हुई जातियों को छोड़कर, शेष किसी भी जाति के लिये सुरक्षित स्थानों की व्यवस्था नहीं की गई है। सभी मतदाताओं के नाम एक ही सूची में होंगे और वह सब मिल कर एक दूसरों को चुनाव में राय देंगे।

अवधि—विधान सभा की कार्य अवधि ५ वर्ष होगी। इसके पश्चात् वह स्वयं टूट जायेगी और नयी सभा के लिये चुनाव किये जायँगे। परन्तु, संकटकालीन अवस्था में संसद् को यह अधिकार दिया गया है कि वह एक कानून पास करके एक समय में उसकी अवधि १ वर्ष के लिये बढ़ा सकती है। परन्तु, किसी भी दशा में यह अवधि संकटकालीन अवस्था की घोषणा समाप्त होने के ६ महीने के पश्चात् से अधिक नहीं होगी।

योग्यता—प्रत्येक वह व्यक्ति जिसकी आयु २५ वर्ष से अधिक हो अथवा

जिसका नाम मतदाताओं की सूची में हो, विधान सभा की सदस्यता के लिये चुना जा सकेगा।

विधान परिषद्

सदस्य संख्या—विधान परिषद् के सदस्यों की कुल संख्या विधान सभा के सदस्यों की संख्या के चौथे भाग से अधिक अथवा ४० से कम नहीं होगी। इन सदस्यों में एक-तिहाई सदस्य स्थानीय संस्थाओं के सदस्य, जैसे, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, म्युनिसिपल बोर्ड इत्यादि द्वारा, एक-तिहाई सदस्य विधान सभा के सदस्यों द्वारा, १/१२ सदस्य उन लोगों द्वारा जो उस राज्य के अन्तर्गत किसी भी यूनिवर्सिटी के ३ वर्ष से अधिक के ग्रेजुएट हैं, १/१२ सदस्य ऐसे लोगों द्वारा जो कम से कम पिछले तीन वर्षों से सेकेण्डरी या उससे ऊँची शिक्षा संस्थाओं में अध्यापन का कार्य कर रहे हों, चुने जायँगे। शेष सदस्य राज्यपाल द्वारा ऐसे व्यक्तियों में से मनोनीत किये जायँगे जो साहित्य, विज्ञान, कला, समाज सेवा तथा सहकारी विभाग (Co-operative Dept.) के क्षेत्र में भाग लेने के कारण, समाज में ऊँचा स्थान पा चुके हों। विधान परिषद् के सदस्यों का चुनाव आयरलैण्ड के संविधान के आधार पर निश्चित किया गया है। इस परिषद् में वह सभी व्यक्ति भाग ले सकेंगे जो राज्य के सबसे बुद्धिमान तथा योग्य व्यक्ति कहे जा सकते हैं।

चुनाव सम्बन्धी बिल में उन राज्यों के लिये जिनमें द्विभवन प्रणाली का प्रयोग किया गया है, विधान परिषद् के सदस्यों की संख्या इस प्रकार निश्चित की गई है :—

बिहार	७२
बंबई	७२
मद्रास	७२
पंजाब	४०
उत्तर प्रदेश	७२
पश्चिमी बंगाल	५१
मैसूर	४०

अवधि—विधान परिषद् एक स्थायी संस्था होगी, परन्तु उसके एक-

तिहाई सदस्य प्रति दूसरे वर्ष चुने जायँगे। विधान सभा की भाँति, परिषद् के एक साथ चुनाव नहीं होंगे।

योग्यता—विधान परिषद् की सदस्यता के लिये आवश्यक है कि उम्मीदवार भारत का नागरिक हो, उसकी आयु कम से कम ३५ वर्ष हो तथा उसमें वह सभी योग्यतायें हों जो संसद् विशेष कानून के द्वारा निश्चित कर सकती है।

दोनों भवनों के संबंध में समान बातें

सदस्यता—कोई व्यक्ति एक समय में एक से अधिक राज्य अथवा संघीय भवन का सदस्य नहीं हो सकेगा। यदि वह ऐसी दो या दो से अधिक विधान सभाओं का अध्यक्ष चुन लिया जायगा तो उसे एक को छोड़कर सभी स्थानों से त्यागपत्र दे देना पड़ेगा।

स्थान त्याग—विधान सभा तथा परिषद् के सदस्यों को इस बात का अधिकार होगा कि वह अपने पद से त्यागपत्र दे दें। यदि कोई सदस्य ६० दिन से अधिक तक 'सभा' या 'परिषद्' के अधिवेशनों में भाग न लेंगे तो उन्हें भी अपने पद से अलग कर दिया जायगा। इसके अतिरिक्त यदि किसी सदस्य में वह योग्यता नहीं रहेगी जो 'सभा' अथवा 'परिषद्' की सदस्यता के लिये आवश्यक है तो उसे भी अपने पद से त्यागपत्र देना पड़ेगा। उदाहरणार्थ, यदि कोई व्यक्ति निर्वाचित होने के पश्चात् दिवालिया या पागल हो जाय या कोई सरकारी नौकरी कर ले या किसी दूसरे देश की नागरिकता ग्रहण कर ले तो उसकी सदस्यता का अन्त हो जायगा। यदि कोई ऐसा व्यक्ति विधान सभा या परिषद् की बैठकों में भाग लेगा जो उसका सदस्य नहीं है या सदस्यता से अलग कर दिया गया है तो उस पर ऐसा करने के लिये ५०० रुपया प्रति दिन के हिसाब से जुरमाना किया जा सकेगा।

अधिकार—विधान सभा तथा परिषद् के सदस्यों के अधिकार ही वही होंगे जो संसद् के सदस्यों के हैं।

गणपूर्ति—(Quorum) विधान मंडल के अन्तर्गत दोनों भवनों के कार्य आरंभ होने के लिये कम से कम १/१० सदस्यों की उपस्थिति आवश्यक रक्खी गई है।

भाषा—विधान सभा तथा परिषद् का कार्य हिंदी, अंग्रेजी या उस राज्य की अपनी भाषा में किया जायगा। परन्तु, सभा के अध्यक्ष को इस बात का अधिकार होगा कि यदि वह समझे कि किसी सदस्य को इन तीनों में से कोई भी भाषा नहीं आती तो वह उसको अपनी मातृ-भाषा में विचार प्रकट करने की अनुमति दे दे। १५ वर्ष के पश्चात् केवल हिंदी ही अंग्रेजी के स्थान पर प्रयोग में लाई जायगी। परन्तु इसके पश्चात् भी राज्य इस बात के लिये स्वतन्त्र होंगे कि वह अपने आंतरिक शासन का कार्य अपनी ही राज्य भाषा में चला सकें। यद्यपि सङ्घ शासन के साथ सम्पर्क बनाये रखने के लिये, उन्हें हिंदी का ही प्रयोग करना पड़ेगा।

पदाधिकारी—संविधान में विधान सभा के लिये एक अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष और विधान परिषद् के लिये एक सभापतित था उप-सभापति की व्यवस्था की गई है। इन अधिकारियों का काम 'सभा' अथवा 'परिषद' की बैठकों में सभापति का आसन ग्रहण करना, उनमें अनुशासन तथा नियन्त्रण कायम रखना, उनका कार्यक्रम बनाना, सदस्यों के अधिकारों की रक्षा करना तथा सभा की बैठकों में कार्यवाही को सुचारु रूप से चलाना होगा। उप-सभापति तथा उपाध्यक्ष केवल उस दशा में काम कर सकेंगे जब अध्यक्ष अथवा सभापति किसी कारण से कार्य न कर सकें। 'सभा' तथा 'परिषद' की बैठकों में सभापति का आसन ग्रहण करने वाला व्यक्ति केवल ऐसी ही दशा में अपने स्वतंत्र मत का उपयोग कर सकेगा जब किसी विषय पर पक्ष तथा विपक्ष में बराबर मत हों। इसका अर्थ यह हुआ कि साधारणतया वह अपने मत का प्रयोग नहीं करेगा। उसे केवल एक निर्णायक मत (Casting Vote) देने का अधिकार होगा।

वेतन—'सभा' तथा 'परिषद' के अध्यक्ष व सभापति अथवा उपाध्यक्ष व उपसभापति को उतना वेतन मिलेगा जितना संविधान लागू होने से पहिले प्रान्तों की असेम्बलियों में स्पीकर तथा डिप्टी स्पीकर इत्यादि को मिलता था।

अधिवेशन—संविधान में कहा गया है कि विधान सभा तथा परिषद की एक वर्ष में कम से कम दो बैठकें अवश्य बुलाई जाएँगी। साथ ही एक

अधिवेशन के अन्त तथा दूसरे अधिवेशन के प्रारम्भ में ६ महीने से अधिक का अन्तर नहीं हो सकेगा।

अधिकार—राज्य के विधान मण्डलों के अधिकार उसी प्रकार के होंगे जैसे सङ्घ शासन के अन्तर्गत संसद् के अर्थात् उन विषयों पर कानून बनाना जो राज्य की अधिकार सीमा के अन्तर्गत हैं राज्य की कार्यकारिणी पर नियन्त्रण रखना, बजट पास करना, टैक्स लगाना तथा सरकार की नीति का सञ्चालन करना।

अधिकार सीमा—राज्य विधान मण्ड उन सभी विषयों पर कानून बना सकेगा जो विधान के सातवें परिशिष्ट के अन्तर्गत राज्य सूची में दिये गये हैं। समवर्ती सूची (Concurrent) में दिये गये विषयों पर भी राज्य की सरकारें कानून बना सकेंगी परन्तु यदि संसद द्वारा बनाये गये कानून और राज्य के कानूनों में कोई विरोध होगा तो संसद् द्वारा बनाये गये कानून ही प्रमाणिक माने जायेंगे।

द्विभवन प्रणाली के अन्तर्गत राज्यों में कानून बनाने की विधि

जिन राज्यों में दो भवन हैं उनमें कानून पास करने की विधि निम्न प्रकार से होगी:—

रुपये-पैसे सम्बन्धी बिल—रुपये पैसे सम्बन्धी बिलों पर सब प्रजातन्त्र शासनों की भाँति निम्न भवन की सम्मति ही सर्वमान्य होगी। कोई ऐसा बिल 'विधान परिषद' में पेश न हो सकेगा, परन्तु ऐसे बिल पर उसे अपनी सम्मति प्रकट करने का पूरा अधिकार होगा। विधान सभा द्वारा पास हो चुकने के पश्चात् ऐसा बिल परिषद के सम्मुख उपस्थित किया जायगा। 'परिषद' को अधिकार होगा कि वह १४ दिन के अन्दर-अन्दर उस बिल के विषय में अपनी सम्मति लिखकर 'विधान सभा' को भेज दे। इस राय को मानने न मानने का अधिकार विधान सभा को पूर्णतया प्राप्त है। यदि वह विधान परिषद की बात न माने या 'परिषद' के सदस्य १४ दिन के अन्दर अपनी राय न भेजें तो ऐसा बिल सीधा राज्यपाल की स्वीकृति के लिये भेज दिया जायगा जिन्हें उस पर हस्ताक्षर अवश्य करने पड़ेंगे। यदि किसी बिल के सम्बन्ध में झगड़ा

हो कि वह रुपये-पैसे सम्बन्धी बिल (Money Bill) है अथवा नहीं तो विधान सभा के अध्यक्ष की राय इस सम्बन्ध में अन्तिम होगी।

दूसरे बिल—दूसरे बिलों के पास किये जाने के सम्बन्ध में संसद् और राज्य के विधान मण्डलों की शक्ति में अन्तर है। संसद् में यदि कोई बिल दूसरे भवनों द्वारा स्वीकार न किया जाय तो राष्ट्रपति को आज्ञा है कि वह दोनों भवनों की एक संयुक्त बैठक बुलायेंगे और जब तक इस बैठक में वह बिल बहुमत से पास न हो जाय, वह रद्द समझा जायगा। परन्तु राय के विधान मण्डलों के निम्न भवन को इस विषय में अधिक शक्ति प्रदान की गई है। संविधान की १४७वीं धारा में कहा गया है कि यदि कोई बिल विधान सभा पास कर दे और विधान परिषद उसे उस रूप में स्वीकार न करे या उसे अस्वीकार कर दे या तीन महीने से अधिक तक उस पर विचार न करे तो विधान सभा को अधिकार है कि वह उस बिल को दोबारा अपने अगले अधिवेशन में पास करने के पश्चात् एक बार फिर परिषद के पास भेज दे और इसके पश्चात् यदि परिषद फिर से उसे अस्वीकार कर दे या उस पर एक महीने से अधिक तक विचार न करे तो वह दोनों भवनों द्वारा पास समझा जायगा और राज्यपाल के हस्ताक्षर के लिये सीधा भेज दिया जायगा।

बिलों के सम्बन्ध में राज्यपालों के अधिकार—जिस समय कोई बिल राज्यपाल के हस्ताक्षरों के लिये भेजा जायगा तो जैसा पहले बताया जा चुका है, राज्यपाल को अधिकार होगा कि वह उस पर हस्ताक्षर कर दे या उसे अस्वीकार कर दे या उस बिल को राष्ट्रपति की सलाह के लिये भेज दे। दूसरी दशा में यदि वह बिल विधान मण्डल द्वारा दोबारा पास कर दिया जायगा तो राज्यपाल को उस पर हस्ताक्षर अवश्य करने पड़ेंगे।

संविधान की २००वीं धारा में कहा गया है कि राज्यपाल ऐसे बिल की स्वयं स्वीकृति नहीं देंगे जिस बिल का हाईकोर्टों के अधिकार पर कोई प्रभाव पड़े। ऐसे बिल को वह राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिये भेजेंगे। शेष बिलों को राष्ट्रपति की सम्मति के लिये भेजना न भेजना उनके अपने अधिकार की बात होगी।

जिस समय कोई बिल राष्ट्रपति की सम्मति के लिये भेज दिया जायगा

तो उन्हें अधिकार होगा कि वह उस बिल को स्वीकार कर लें या उसे अस्वीकार कर दें या उसे दोबारा विचार के लिये राज्य की सरकार को लौटा दें। अन्तिम दशा में विधान मण्डल को उस बिल पर ६ महीने के अन्दर-अन्दर पुनः विचार करना होगा और यदि फिर वह बिल उसी प्रकार पास कर लिया जाय तो उसे राष्ट्रपति के पास दोबारा भेज दिया जायगा।

संविधान में यह बात स्पष्ट नहीं की गई है कि ऐसी दशा में जब दोबारा भी विधान मण्डल किसी बिल को राष्ट्रपति के पास भेजें तो उन्हें स्वीकार करना पड़ेगा या नहीं। संभवतः इस दशा में और देशों की रीति रिवाजों (Conventions) से काम लिया जायगा।

४. भाग 'ग' (चीफ कमिश्नर) के राज्यों का शासन प्रबन्ध

संविधान की २३६ से २४२ तक की धाराओं में चीफ कमिश्नर द्वारा शासित राज्यों के शासन प्रबन्ध का विवरण दिया गया है। इन धाराओं में कहा गया है कि—

केन्द्रीय सत्ता के आधीन राज्यों का प्रबन्ध चीफ कमिश्नरों, लेफ्टीनेंट गवर्नरों (उप राज्यपाल) या किसी पड़ोसी सरकार के द्वारा किया जा सकता है। अन्तिम दशा में अर्थात् पड़ोसी सरकार को ऐसे क्षेत्रों का शासन प्रबन्ध सौंपने से पहिले राष्ट्रपति इस बात का प्रयत्न करेंगे कि वह उस क्षेत्र की जनता तथा पड़ोसी राज्य की सरकार की उस सम्बन्ध में राय मालूम कर लें।

इन राज्यों में राष्ट्रपति को यह भी अधिकार होगा कि वह उनके शासन के लिये मनोनीत किये हुए अथवा चुने हुए या कुछ मनोनीत और कुछ चुने हुए सदस्यों की एक विधान सभा बना दें या उनके लिये कुछ मन्त्रिओं अथवा सलाहकारों का मण्डल बना दें अथवा इस प्रकार की दोनों ही संस्था कायम कर दें। इस प्रकार का आयोजन संविधान का संशोधन नहीं समझा जायगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि चीफ कमिश्नरों के प्रान्त में प्रजातन्त्रात्मक संस्थाओं का संगठन पूर्ण रूपेण संघ सरकार की इच्छा पर निर्भर रहेगा।

दिल्ली के प्रांत में, वहाँ की जनता द्वारा आजकल इसलिये एक शक्ति-

शाली आंदोलन किया जा रहा है कि उनके लिये किसी विधान सभा का निर्माण किया जाय। यदि ऐसा न किया गया तो इसका अर्थ होगा कि इस प्रांत की २० लाख जनता को अपने शासन प्रबन्ध में स्थानीय मामलों को छोड़कर और किसी प्रकार का अधिकार न मिल सकेगा।

एक प्रकार से हम कह सकते हैं कि नये संविधान में केन्द्र द्वारा शासित केन्द्रों की जनता के साथ पूरा न्याय नहीं किया गया है। उनके भाग्य का निर्णय संघ संसद् पर छोड़ दिया गया है। यदि संघ संसद् ने शीघ्र ही इन क्षेत्रों की जनता के लिये कोई उचित व्यवस्था नहीं की तो इसका अर्थ होगा कि केन्द्र द्वारा शासित भारत की लगभग ३॥ करोड़ जनता को प्रजातन्त्र शासन का लाभ प्राप्त न हो सकेगा।

५. भाग घ (अंडेमन निकोबार) के राज्य का शासन प्रबन्ध

इस राज्य के शासन प्रबंध के लिये संविधान की २४३वीं धारा में व्यवस्था की गई है। इस धारा में कहा गया है कि अंडेमान निकोबार या किसी और ऐसे प्रांत का शासन जो बाद में भारत में सम्मिलित हो जाय, राष्ट्रपति द्वारा किया जायगा। इस काम में सहायता प्राप्त करने के लिये वह एक चीफ कमिश्नर या किसी और ऐसे अधिकारी की नियुक्ति कर सकते हैं जिसे वह उचित समझें। इस क्षेत्र के कानून बनाने का अधिकार राष्ट्रपति को होगा। संघीय कानून या वह कानून जिनके द्वारा उस क्षेत्र का संविधान लागू होने से पहले शासन चलाया जाता था, केवल उस दशा में लागू समझे जायेंगे जब राष्ट्रपति उनकी स्वीकृति दे दें।

६. अनुसूचित क्षेत्र

(Scheduled Areas) तथा अनुसूचित जन-जातियों (Scheduled tribes) का शासन प्रबन्ध

हमारे देश में अनेक ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ सभ्यता का आधुनिक वातावरण अभी तक अपना प्रभाव नहीं फैला पाया है। इन क्षेत्रों की जनता अभी तक प्राचीन काल की आखेट अथवा पशुपालन अवस्था में रहकर ही अपने जीवन का निर्वाह करती है। १९३५ के विधान के अंतर्गत हमारे देश के अनेक भाग

अनुसूचित क्षेत्र घोषित कर दिये गये थे और उनका शासन प्रबन्ध सीधे गवर्नरों द्वारा किया जाता था। मंत्रियों को इन क्षेत्रों के शासन पर किसी प्रकार का अधिकार प्राप्त नहीं था। नये संविधान के अंतर्गत ऐसे क्षेत्रों की संख्या बहुत कम कर दी गई है और केवल वही क्षेत्र इस व्यवस्था के अंतर्गत सम्मिलित किये गये हैं जहाँ की जनता अपने लिये कुछ विशेष संरक्षण चाहती थी। ऐसे क्षेत्र अधिकतर आसाम प्रांत में हैं।

संविधान की पाँचवीं अनुसूची (Fifth schedule) में इन क्षेत्रों की व्यवस्था का विस्तृत वर्णन किया गया है। इसमे कहा गया है कि इन क्षेत्रों का शासन प्रबन्ध राष्ट्रपति, राज्यपाल अथवा राजप्रमुखों के द्वारा करायेंगे, जिन्हें अपने कार्य की वार्षिक रिपोर्ट संघ सरकार को देनी हंगी। इन क्षेत्रों में कोई भी संघीय अथवा राज्य की सरकार का कानून उस समय तक लागू न किया जायगा जब तक राष्ट्रपति के आदेशानुसार राजप्रमुख अथवा राज्यपाल उसकी स्वीकृति न दे दें। इन क्षेत्रों की स्थानीय जनता को शासन प्रबंध का अनुभव प्रदान करने के लिये संविधान में कहा गया है कि इन क्षेत्रो में आदिम जाति मंत्रणा परिषद् (Tribes Advisory Council) कायम की जायगी जिनमें अधिकतर सदस्य इन जातियों के अपने चुने हुए प्रतिनिधि होंगे। ऐसे क्षेत्रों का शासन प्रबंध इन्हीं मंत्रणा परिषदों की सलाह से किया जायगा।

भाग बी. व सी. राज्यों में रहने वाली जनता की माँग

नये संविधान के अंतर्गत विभिन्न राज्यों का वर्गीकरण, जिस प्रकार ए. बी और सी. श्रेणी में किया गया है, उसके विरुद्ध विधान निर्माताओं को कड़ी आलोचना की गई है। बी और सी श्रेणी के राज्यों में रहने वाली जनता का कहना है कि उनके साथ भारी अन्याय किया गया है। अधिकतर बी राज्यों में किसी प्रकार की विधान सभाएँ नहीं हैं। उन सब में लोकप्रिय मंत्रिमंडल भी नहीं हैं। सी श्रेणी के राज्यों की दशा और भी अधिक खराब है, कारण, नये चुनावों के पश्चात्, बी श्रेणी के राज्यों में तो विधान सभाएँ और लोकप्रिय मंत्रिमंडल बन जायेंगे, परन्तु सी श्रेणी के राज्य चीफ कमिश्नरों या लैफ्टीनैंट गवर्नरों के आधीन ही रहेंगे। इसलिये इन दोनों श्रेणियों के राज्यों में रहने वाली जनता की ओर से माँग की जा रही है कि भारत सरकार को ए. बी.

और सी. का भेद मिटाकर, सब राज्यों की जनता के साथ समान व्यवहार करना चाहिये तथा उन्हें एक से ही अधिकार प्रदान करने चाहिये। भारत सरकार ने आश्वासन दिलाया है कि बहुत शीघ्र ही सी श्रेणी के राज्यों में प्रजातन्त्रात्मिक संस्थाओं की स्थापना के लिये संसद् में बिल प्रस्तुत किया जायगा। रही वर्गीकरण की बात तो वह इसलिये किया गया है कि जब तक बी और सी राज्यों की जनता को प्रजातन्त्र शासन का कुछ अनुभव प्राप्त नहीं हो जाता उन्हें अधिक अधिकार प्रदान नहीं किये जा सकते।

योग्यता प्रश्न

(१) नये संविधान के अनुसार राज्यपाल की शक्तियों का वर्णन कीजिये। (यू० पी० १९५१)

(२) नये संविधान के अनुसार राज्य की व्यवस्थापिका सभा का निर्माण कैसे होता है ? उसकी शक्तियों तथा विशेषाधिकारों का वर्णन कीजिये ? (यू० पी० १९५१)

(३) कुछ राज्यों में द्विभवन प्रणाली को क्यों अपनाया गया है ? क्या यह क़दम अप्रजातन्त्रवादी नहीं है ?

(४) राज्यों में कार्यपालिका का स्वरूप क्या होगा ? मंत्रियों और राज्यपाल के बीच पारस्परिक संबंध का विवेचन कीजिये।

(५) नये संविधान में राज्यों का ए. बी. और सी श्रेणियों में विभाजन क्यों किया गया है ? इन तीनों के शासन प्रबन्ध में मुख्य रूप से क्या क्या भिन्नताएँ होंगी।

(६) राज्यों और संघ सरकार का पारस्परिक सम्बन्ध क्या होगा ? उन दोनों के बीच गति अवरोध को किस प्रकार दूर किया जायगा ?

(७) अल्प संख्यक तथा जन जातियों के अधिकारों की रक्षा के लिये राज्यों में क्या विशेष प्रबन्ध किया गया है ?

(८) नये विधान में बी और सी राज्यों की जनता के साथ घोर अन्याय किया गया है। यह कथन कहाँ तक ठीक है।

अध्याय ८

राज्यों तथा संघ सरकारों के बीच अधिकारों तथा राजस्व के साधनों का वितरण

अधिकार वितरण का आधार

संघीय विधानों का एक मुख्य लक्षण, जैसा पहले बताया जा चुका है, संघ सरकार तथा उसके अन्तर्गत राज्यों के बीच अधिकारों का विभाजन है। यह अधिकार विभाजन इस आधार पर किया जाता है कि जो विषय राष्ट्रीय महत्त्व के होते हैं तथा जिन पर सारे देश के लिए समान नीति की आवश्यकता होती है, एवं जिनमें सभी राज्य समान रूप से रुचि रखते हैं, उन्हें संघ सरकार के नियन्त्रण दे दिया जाता है, शेष विषय जो स्थानीय महत्व के होते हैं तथा जिन पर विभिन्न क्षेत्रों की आवश्यकता के अनुसार कार्य करने की आवश्यकता होती है वह राज्यों के आधीन कर दिये जाते हैं। इस प्रकार संघीय शासनों में संघ सरकार तथा उसमें सम्मिलित होने वाली सभी राष्ट्रों के बीच कानून, शासन, न्याय और अर्थ सम्बन्धी अधिकारों का पूर्ण रूप से विभाजन किया जाता है।

अधिकार विभाजन के सम्बन्ध में साधारणतया दो प्रणाली प्रचलित है। एक प्रणाली के अनुसार, कुछ निश्चित विषय केन्द्रीय सरकार को सौंप दिये जाते हैं और शेष सभी विषयों का नियंत्रण राज्यों के ऊपर छोड़ दिया जाता है। अमरीका, स्विटजरलैंड और आस्ट्रेलिया में यही पद्धति प्रचलित है। कैनाडा में इसके विपरीत एक दूसरी प्रणाली का अवलम्बन किया गया है। उस देश में कुछ निश्चित विषय राज्यों को देकर, शेष सभी विषय संघ सरकार के नियंत्रण में रख लिये गये हैं। इन दोनों प्रणालियों में प्रथम प्रणाली

विकेन्द्रीयकरण की भावना के आधार पर अच्छी है तथा द्वितीय प्रणाल शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार की स्थापना के उद्देश्य से उपेक्षित है।

भारत में अधिकार विभाजन

हमारे नये संविधान के अन्तर्गत भारत में उपरोक्त दोनों प्रणालियों से भिन्न एक तीसरी पद्धति का प्रयोग किया गया है। यह पद्धति कुछ अंशों में आस्ट्रेलिया के संविधान पर आधारित हैं जहाँ संघ सूची के अतिरिक्त कुछ विषय एक समवर्ती सूची में रक्खे गये हैं। हमारे पुराने १६३५ के कानून में भी इसी पद्धति का अनुसरण किया गया था। इस प्रणाली के अनुसार राज्य के सभी अधिकार तीन सूचियों में बाँटे गये हैं (१) संघी सूची (२) राज्य सूची, (३) समवर्ती सूची। संघ सूची में वह विषय रक्खे गये हैं जिन पर संघ सरकार ही कानून बना सकती है। राज्य सूची में इसके विपरीत वह विषय हैं जिन पर राज्यों की सरकारें कानून बना सकती हैं। तीसरी समवर्ती सूची में वह विषय हैं जिनका स्वरूप तो स्थानीय है, परन्तु जिन पर यदि सारे राष्ट्र के लिये एक से ही कानून बना दिये जायँ तो शासन की कुशलता तथा देश के एकीकरण में अत्यन्त सहायता मिलती है। इस तीसरी सूची के निर्माण से संघ विधान का एक बहुत बड़ा दोष अपरिवर्तनशीलता तथा कानूनीपन दूर हो जाता है और राष्ट्रीयता के विकास में अत्यन्त सहायता मिलती है। इस सूची के विषयों पर राज्य तथा संघीय-दोनों ही सरकारों को कानून बनाने का अधिकार प्राप्त होता है, परन्तु विरोध की दशा में केवल संघीय कानून ही प्रमाणिक माने जाते हैं।

अवशिष्ट अधिकार (Residuary Powers)

वैसे हमारे नव संविधान में राज्य के सभी अधिकारों को इन तीन सूचियों में विभक्त करने का प्रयत्न किया गया है, परन्तु फिर भी संभव है, कुछ विषय इस विषय विभाजन के क्षेत्र से बाहर रह गये हों। ऐसे विषयों को अवशिष्ट (Residuary) विषय कहा जाता है। संविधान में कहा गया है कि यह विषय संघ सरकार के आधीन रहेंगे। दूसरे, संघीय विधानों में यह विषय राज्यों की सरकारों के आधीन रहते हैं। इस प्रकार समवर्ती सूची द्वारा, अवशिष्ट अधिकारों को

अंत में ऐसे सभी अंग्रेजी के शब्दों का हिंदी अनुवाद दे दिया गया है नका इस पुस्तक में स्थान-स्थान पर प्रयोग किया गया है।

पुस्तक के दूसरे भाग में भारतीय नागरिक जीवन के सम्बन्ध में आठ अध्याय जोड़ दिये गये हैं। इन अध्यायों की सहायता से पाठकों को अपने देश के नागरिक जीवन का संपूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जायगा। हमारे सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक जीवन की क्या विशेषताएँ हैं, हमारी शिक्षा की क्या समस्याएँ हैं, हमारे जीवन में धर्म का क्या स्थान है, हमारे समाज में स्त्रियों तथा हरिजनों को क्या अधिकार प्रदान किये गये हैं, हम अपने दैनिक जीवन से सामाजिक कुरीतियों को दूर करने में कहाँ तक सफल हुए हैं—इन तथा दूसरे अनेक प्रश्नों का उत्तर इस पुस्तक के दूसरे भाग में विस्तृत रूप से देने का प्रयत्न किया गया है।

इंटरमीजियेट की कक्षाओं के विद्यार्थी इस पुस्तक को विशेष रूप से उपयोगी पायेंगे। इस पुस्तक में नये पाठ्यक्रम के अनुसार सभी विषयों का विस्तृत विवेचन किया गया है। लेखक को पूर्ण आशा है कि जिस प्रकार भारत के सभी प्रान्तों, विशेषकर उत्तर प्रदेश के अध्यापकों तथा विद्यार्थियों ने उसकी संविधान सम्बन्धी अंग्रेज़ी पुस्तक का स्वागत किया था उससे कहीं अधिक वह प्रस्तुत पुस्तक का स्वागत करेंगे। इस पुस्तक में सुधार करने के लिये यदि कोई भी रचनात्मक सुझाव पाठकों ने प्रस्तुत करने की कृपा की तो लेखक ऐसे सभी व्यक्तियों का आभारी होगा।

राजनारायण गुप्त

ता० १०-७-१९५०

विषय-सूची

...को धार्मिक मान्यता नहीं

...वम्बर (भा.)। सती प्रथाको कभी धार्मिक मान्यता प्राप्त नहीं थी और ...रुद्ध स्पष्ट आदेश है। उस्मानिया विश्वविद्यालयमें राजनीति विज्ञानके ...सिहाचारीने एक नवीनतम अध्ययनमें यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया है। उन्होंने ...प्रथा को वर्जनीय माना था। यह समझना गलत है कि इस पर पहली बार ...अध्यादेश द्वारा रोक लगायी गयी है।

...कहा कि यह आम धारणा है कि सती प्रथा पर प्रतिबन्ध ब्रिटिश राजमें लार्ड ...रूर दिवरालाके सती काण्डके बाद राजस्थानके राज्यपालने अध्यादेश जारी ...है। उन्होंने अपने अध्ययनका हवाला देते हुए कहा कि भारतमें कभी सती ...प्त नहीं रही। ऋग्वेदमें उसका स्पष्ट विरोध है। ऋग्वेदमें सती प्रथाको ...ुए कहा गया है कि ऋग्वेदने इसे वर्जनीय माना है।

...क सभाको सम्बोधित करते हुए जपा सांसद सैय्यद शहाबुद्दीन। छाया–क्लाउन

...री मस्जिद विवादका हल सम्भव

...गठनकर विवादका ... हिन्दुओं-मुसलमानोंके बीच दूरी बढ़ती जायगी ... इंदिराजीके समय जो १९८० से ...